मेरे कथागुरुका कहना है

[भाग २]

●

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१४४.

मेरे कथागुरुका कहना है

[लघुकथा-संग्रह]

रावी

UNIVERSITY LIBRARY
25 AUG 1962
ALLAHABAD

भारतीय ज्ञानपीठ,
काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६१ ई०
मूल्य तीन रुपये

प्रकाशक :
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी.

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी.

प्राक्कथन

मेरी ८८ लघु-कथाओंका संग्रह 'मेरे कथागुरुका कहना है' नामसे भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो चुका है। उसी शैलीकी ६९ लघु-कथाएँ इस 'संग्रह' में प्रस्तुत हैं। कथाओंके माध्यमसे जीवनकी रोचकता और सार्थकताके जो दृश्य और दृष्टिकोण एक संग्रहमें प्रस्तुत किये गये है उन्हींका विस्तार दूसरेमे है। दोनों संग्रह स्वतः स्वतन्त्र होते हुए एक-दूसरेके पूरक भी हैं।

कैलास (आगरा)
सन्तुलन दिवस —रावी
२३ सितम्बर १९६१

विषय-क्रम

१.	सुखोंकी दूकान	९
२.	पहले बाहर, फिर भीतर	१३
२.	खोई भेड़	१५
४.	मोतियोंकी खेती	१७
५.	बड़ी खोज	२०
६.	दान और दुआ	२३
७.	उपकृतके आँसू	२६
८.	भूखा गाँव	२९
९.	भिखारी और चोर	३३
१०.	नया बल	३५
११.	पूर्ण भिक्षु	३७
१२.	केवल भिक्षा	३९
१३.	दानका स्पर्श	४२
१४.	धूप-छाँव	४४
१५.	थके विजेता	४७
१६.	स्थूल और सूक्ष्म	५०
१७.	मुक्तिकी ओर	५३
१८.	खोजकी माया	५५
१९.	गिद्ध और मक्खी	५७
२०.	निन्नानबे और सौ	६१
२१.	तुरत उपचार	६४
२२.	भोला गाँव	६८
२३.	घर और घेरा	७०
२४.	आस्तिक और नास्तिक	७२
२५.	कुत्तोंके लिए	७४
२६.	नया व्यवसाय	७७
२७.	न्यायकी चोरी	८१
२८.	नया द्रष्टा	८४
२९.	पहला ऋषि	८७
३०.	भवसागर	९०
३१.	बृहत्तरके लिए	९४
३२.	सिद्धिका अन्त	९७
३३.	ज्ञानके परदे	९९
३४.	विपदाके हाथ	१०२
३५.	अनबिक मोती	१०४
३६.	अमृतके प्याले	१०६
३७.	ईश्वर या दर्पण	१०८
३८.	कीलित और गतिशील	११०
३९.	प्रेम-रास	११२
४०.	अज्ञातका मोल	११४
४१.	नया व्यवधान	११६
४२.	नारी, नाव और सागर	११८
४३.	नारी वा नारायण	१२०
४४.	आश्रयका मार्ग	१२२

४५. नया लक्षण १२३
४६. घावके नीचे १२५
४७. सात अरबका बिल १२७
४८. पति-पत्नी १३०
४९. प्यारकी भूमि १३१
५०. सिद्धिके परे १३३
५१. परिधिहीन १३५
५२. मतदान १३७
५३. तृष्णाका खेल १३९
५४. अमृतत्रयी १४२
५५. जड़ता, करुणा और बोध १४४
५६. सुप्त प्रेरक १४६
५७. अन्तिम खोज १४८
५८. जो नहीं जानता १५१
५९. आदमीका नुस्खा १५३
६०. अदितिकी आँखें १५५
६१. धनीकी खोजमें १५८
६२. मन्दिर और वेश्या १६१
६३. दानकी विडम्बना १६३
६४. लक्ष्मीवाहन १६६
६५. बूचड़की कमाई १६९
६६. अचुम्बित चुम्बन १७१
६७. शीतल ज्वाला १७३
६८. काष्ठ और कुल्हाड़ी १७६
६९. साधनाका अन्त १७८

सुखोंकी दूकान

अपनी कमाईका बहुत-सा धन बचाकर मैं एक बार देश-देशान्तरकी लम्बी यात्राको निकला। उस यात्रामें एक देशके एक बड़े बाज़ारमे मुझे सबसे अधिक विचित्र एक दूकान दिखाई दी। उस दूकानके फाटकपर लिखा हुआ था—'सुखोंकी दूकान।'

मै उस दूकानमे घुसा और ड्योढ़ीके पास ही दूकानदारने मेरा अभिवादन किया। मैंने उससे कहा कि मै कुछ सुख खरीदना चाहता हूँ। वह मुझे सुखकी वस्तुएँ दिखानेके लिए सम्मानपूर्वक मेरे आगे-आगे चला।

अगणित छोटी-बड़ी कोठरियोसे बनी उस दूकानमे सौदेकी कोई वस्तु मुझे दिखाई न दी। कोठरियोंके भीतर कोठरियाँ पार करता हुआ मैं एक ऐसे दालानमें पहुँच गया, जहाँ बदबूके मारे मेरी नाक फटने लगी, जी मचलाने लगा और होते-होते दम भी घुटने लगा। मैंने दूकानदारसे वापस लौटनेकी प्रार्थना की।

'अभी और देखिए हुजूर।' दूकानवालेने अदबके साथ मुझसे कहा—'और ज़्यादा देखनेकी तबीयत न हो तो यह लीजिए 'सुख नम्बर १' कहते-कहते अपने हाथमें ली हुई एक छोटी-सी छड़ी उसने मेरे हाथमें थमा दी। छड़ीको छूते ही सारी बदबू, मिचलन और घुटन एकदम जाती रही और मेरे निकले हुए प्राण जैसे एकदम लौट आये। इस संकटसे मुक्ति पानेपर मुझे जो सुख मिला वह जीवनमें पहले कभी नहीं मिला था।

इस सुख नम्बर १ को खरीदनेके लिए मैंने अपनी पूरी थैली दूकान-वालेके हाथमें रख दी, किन्तु वह बड़ा भला आदमी था। उसमेंसे केवल एक रुपया लेकर शेष मुझे लौटाते हुए उसने कहा—

'इस सुखकी क़ीमत तो कुछ भी नहीं। आपका आग्रह है तो मैं एक रुपया ले सकता हूँ वरना बिना दाम भी मैं यह सुख नम्बर १ आपको दे सकता था।'

एक रुपयेमें सुख नं० १ की वह छड़ी विवरण-पत्र और सेवन-विधिके साथ लेकर मैं घर लौट आया।

इस छड़ीका चमत्कार यह था कि उल्टा करके उसे हाथमें लेनेपर मनचाहा कोई भी कष्ट आपको, या जिसे आप यह चमत्कार दिखाना चाहें उसे, तुरन्त ही घेर लेता था और उसी छड़ीको सीधा करके—मूठ ऊपरको रखकर—पकड़ते ही वह कष्ट दूर हो जाता था।

कुछ दिन बाद इस सुख नं० १ से मेरा जी भर गया, क्योंकि इसमें कोई वास्तविक सुख न होकर दुःख और दुःखके उतारका ही खेल था और उस उतारको ही सुख समझनेका भ्रम था। इसलिए मैं दूसरी बार सुखोंकी दूकानपर पहुँचा।

दूकानदारने अबकी बार मुझे एक शीशी दी, जिसपर लिखा था—'सुख नं० २, सुभ्रम रसायन।' इस शीशीमें एक गाढ़ा-सा पदार्थ था। किसी प्रकारकी भी शारीरिक, मानसिक दुःख-विपत्ति आ पड़नेपर उस पदार्थको सूँघ लेनेपर वह दुःख एकदम ग़ायब हो जाता था और उस दुःखके विपरीत अत्यन्त सुखद और आशाजनक सपने दीखने लगते थे। दूकानदारने अच्छी तरह प्रदर्शन-पूर्वक इस रसायनका चमत्कार मुझे दिखाया और मैने देखा कि इस सुखका उपयोग करनेके लिए अपनी ओरसे किसी प्रकारके दुख-संकटको उत्पन्न या निमन्त्रित करनेकी आवश्यकता नहीं थी। यह वास्तवमें एक कष्ट-निवारक रसायन था।

दूकानदारने बड़े संकोचके साथ इस सुख नं० २ का मूल्य पाँच रुपया मुझसे स्वीकार किया।

घर लौटकर मैंने इस सुख नं० २ का भरपूर उपयोग किया और अपने मित्रोंका भी इसके लाभमें हिस्सा बटाया। किन्तु कुछ ही दिनोंमें

मैने परख लिया कि इस रसायन-द्वारा दुःखोंकी निवृत्ति केवल काल्पनिक और इसलिए कुछ ही समयके लिए होती है और उन टले हुए दुःखोंका प्रभाव कुछ समय बाद ठीक वैसा ही प्रकट होता है जैसा उस रसायनका प्रयोग न करनेपर होता।

अस्तु, मैं तीसरी बार सुखोंकी दूकानपर गया। दूकानदारकी भल-मनसाहतपर मेरा विश्वास बढ़ा ही था। उसने मुझे बताया कि सुख नं० २ या सुभ्रम रसायनका अर्थ ही सुखद भ्रम उत्पन्न करनेवाला रसायन है और उसका दूसरा नाम 'पलायन अवलेह' भी है। अबकी बार उसने मुझे 'सुख नं० ३, कामद यन्त्र' अंकित एक बन्द डिब्बेमें-से खोलकर ताँबे जैसी धातुका बना एक गुलाबके आकारका फूल दिखाया और बताया कि इस सुख नं० ३ में से मैं जो भी वस्तु चाहूँगा वह मुझे आकर मिलेगी। इस सुख नं० ३ के मूल्यमें उसने मेरी पूरी थैली, जो मैं उस समय ले गया था, निःसंकोच स्वीकार कर ली।

सुख नं० ३ के यन्त्र-द्वारा मैने संसारमें जिस वस्तुकी भी कामना की वही मुझे प्राप्त हो गई। किन्तु उस प्रकार प्राप्त प्रत्येक वस्तु कुछ समय बाद मेरे लिए नीरस और अनाकर्षक हो जाती थी। उस यन्त्र-द्वारा ज्यों-ज्यों मैं एकसे-एक सुन्दर और मूल्यवान् वस्तुओंको प्राप्त करता गया, वे सब अनाकर्षक बनकर मेरे घरमें कचरेके ढेरकी तरह बढ़ती गई। तंग आकर मैने चौथी बार सुखोंकी दूकानकी शरण ली।

दूकानवालेने अबकी बार विशेष तपाकके साथ मेरा स्वागत किया। उसने कहा—'सुख नं० १ खरीद ले जानेके बाद कम हीं ग्राहक सुख नं० २ खरीदने आते है, और सुख नं० २ खरीदनेके बाद तो बहुत ही कम लोग तीसरे सुखकी खोजमें यहाँ आते हैं। मेरे प्रबन्धकालमे इस दूकान-पर चौथी बार आनेवाले तुम्हीं पहले व्यक्ति हो, इसके लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। सुख नं० ३ का एक नाम 'कामद-यंत्र' और दूसरा 'रस-हर' यानी हर वस्तुको रस-हीन बनानेवाला यंत्र भी है। जो वस्तु

प्राप्त करके अपने अधिकारमे रख ली जाती है उसका रस सूख जाता है। अब मैं तुम्हें सुख नं० ४ दूँगा और बिना मूल्य ही दूँगा, क्योंकि चाँदी-सोनेकी कमहैसियतीका अनुभव पाकर अबकी बार तुम कोई क़ीमत लेकर नहीं आये हो।

इतना कहकर उसने अपने हाथकी उँगलीमें पहनी हुई दो अँगूठियोंमे-से एक उतारकर मेरी उँगलीमें पहना दी। अँगूठीपर लिखा हुआ था—'सुख नं० ४, प्रगति मुद्रिका।'

इस सुख नं० ४ को हाथमें पहनकर मैं अपने घर लौटा। इस सुख-मुद्रिकाका फल यह है कि इसे पहने हुए तन और मनके सुख और दुःख सभी साधारण रूपमें मुझपर आते हैं और जब तक टिकते है, तब तकके लिए अपना प्रभाव डालकर चले जाते हैं। किन्तु जो काम मुझे करना होता है, उसे मैं अपने तन-मनके एक नहीं तो किसी दूसरे अवयवसे बराबर करता रहता हूँ और उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती। इस निर्विघ्न, निरन्तर क्रिया-गतिमें एक ऐसा नये प्रकारका सुख है, जो किसी भी क्षण मेरे लिए अप्राप्य नहीं है।

× × ×

अपने कथागुरुके संकेतपर मेरा अनुमान है कि सुखोंकी उस दूकानमे कुछ अगले नम्बरोंके सुख अभी और विद्यमान हैं, किन्तु उनके लिए मुझे अब उस दूकानपर जाना नहीं पड़ेगा और वह सुखोंका धनी दूकानदार स्वयं ही मेरे पास आकर यथासमय उन्हें मेरे हाथों भेंट करेगा।

पहले बाहर, फिर भीतर

एक राजाको एक बार अपने महलोंमें सौ नये सेवक नियुक्त करनेकी आवश्यकता हुई। राजाने सारे राज्यमे इस आवश्यकताका विज्ञापन करा दिया और यह भी स्पष्ट कर दिया कि प्रार्थियोंमे किस प्रकारको योग्यताएँ होनी चाहिएं।

निश्चित दिन सुबह ही से राजमहलके द्वारपर दस सहस्र प्रार्थियोंकी भीड़ एकत्र हो गई। राजमहलके सेवकोंका असाधारण वेतन भी तो अत्यधिक आकर्षक था।

प्रार्थियोंके निरीक्षणका पूर्व-निश्चित समय आया और महलके भीतरसे निकलकर एक राजपुरुषने सूचना दी कि अभी निरीक्षण-अधिकारीके आनेमें कुछ और बिलम्ब है।

दो घंटे बाद वही राजपुरुष फिर बाहर आया और उसने प्रतीक्षा करती हुई भीड़को सूचना दी कि निरीक्षण-अधिकारीके आनेमें अभी कुछ और बिलम्ब है।

इसपर एक सहस्र प्रार्थी असंतुष्ट होकर अपने घरोंको लौट गये।

दो घटे बाद फिर उसी राजपुरुषने आकर वैसी ही बात कही और उससे खीझकर दो सहस्र प्रार्थी और लौट गये।

दो-दो घंटे बाद उस राजपुरुष-द्वारा उसी सूचनाकी पुनरावृत्ति होती रही और सूर्यास्तके पश्चात् राजमहलके द्वारपर केवल सौ प्रार्थी शेष रह गये। अपनी इस संख्याको देखते हुए संभवतः इनमें-से प्रत्येकको अब आशा हो गई थी कि वह राज-सेवामें अवश्य ही ले लिया जायगा। किन्तु रातके दो पहर बीतते-बीतते इन्हें भी नींद आने लगी। दिन-भरके भूखे और थके-माँदे ये प्रार्थी महलके द्वारकी भूमिपर लेटकर विश्राम करने लगे और इनकी आँख लग गई।

ग्रीष्म ऋतु थी और यह देश धरतीका सबसे अधिक गरम देश था। महलके द्वारपर विरल पत्रोंवाले वृक्षोंकी अपर्याप्त छायामें बैठे हुए,

इन्होंने दिन-भरका आतप सहन किया था और इस आधी रातके समय भी गरमीकी उमस वायुहीन वातावरणका सहयोग पाकर उनके सोये हुए शरीरोंको पसीनेसे लथपथ करके उन्हें बेचैन कर रही थी।

इन सौमें-से निन्यानबे व्यक्ति धरतीपर पड़े सोये हुए थे और केवल एक अब भी जागता हुआ उनके मुखोंपर अपने हाथके पंखेकी हवा झलता हुआ उन्हे कुछ सुख पहुँचानेका प्रयत्न कर रहा था। यह व्यक्ति प्रातःकाल ही से अपनी शक्तिभर महलके द्वारपर एकत्र जन-समुदायकी जल और वायुसे सेवा करनेमें संलग्न था।

रातके तीसरे पहर महलका द्वार एक बार और खुला और महाराज स्वयं उसमेंसे बाहर निकलकर आये। महाराजके साथ पीछे-पीछे आये हुए सेवकोंने सभी सोये हुए व्यक्तियोंको जगाकर भोजन, जल और शीतल वायुसे उनका सत्कार किया और तत्पश्चात् उन्हें अपने-अपने घरको बिदा करते हुए सबकी निस्वार्थ सेवामें अब तक जुटे हुए इस एक व्यक्तिका हाथ पकड़कर महाराजने उन सबके सामने कहा—

'जो महलके द्वारपर सेवा करता है, केवल वही महलके भीतर भी सेवा करनेका अधिकार अपने सामर्थ्यसे अर्जित कर लेता है। इस व्यक्तिने एक दिन-रातका वेतन महलके बाहर ही रहकर उपार्जित कर लिया है और इस बारके प्रार्थियोंमें-से केवल यही मेरी अभीष्ट आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकता है।'

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि उस राजाके लिए आवश्यक सौ सेवकों की भर्तीका क्रम अब भी बराबर चल रहा है, उसकी चतुर्थांश पूर्ति भी अभी तक नहीं हो पाई है और इस कथाके प्रत्येक पाठकके लिए उस परम सम्मानित राज-सेवामें प्रविष्ट होनेका अवसर आज भी खुला हुआ है।

खोई भेड़

यह कथा उस युग और वर्गकी है, जिसमें विश्वास और शंकाओंके सहारे जीवन चला करता था। उन दिनों वेदोंकी ऋचाओंका निर्माण हो रहा था और भेड़ें और बकरियाँ ही राजा तथा प्रजाजनोंकी प्रमुख संपत्ति हुआ करती थीं।

एक गृहस्थकी एक भेड़ खो गई थी। उसने राज-सभामें उसकी खोज के लिए आवेदन कर दिया था। उसका अनुमान था कि वह किसी दूसरे चरवाहेके पशुदलमें मिल गई है।

राज-पुरुषोंने इस खोई हुई भेड़की सूचना सभी पशु-चारकोंमे प्रसारित कर दी। किन्तु कोई भी उस भेड़को लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ।

इस व्यक्तिको साथ लेकर राज-पुरुषोंने सभी पशु-स्वामियोंके बाड़ों की शोध की, किन्तु कहीं भी वह खोई हुई भेड़ न मिली।

राजाके निजी पशुओं ही में कहीं वह भेड़ आकर न मिल गई हो, इस सन्देहके निवारणार्थ राजाने स्वयं अपने पशु-चारकोंके साथ जाकर अपने पशुओंके दलका निरीक्षण किया। अपने सभी पशुओंको वह भली भाँति पहचानता था। कोई भी अपरिचित, पराई भेड़ उसे वहाँ न मिली।

राजाने न्याय दिया—वह खोई भेड़ अवश्य ही किसी हिंसक पशुके उदरमें पहुँच गई होगी या किसी पर्वत-शिखरसे गिरकर स्रोतस्विनीमें बह गई होगी। प्रार्थीको संतोष करना चाहिए।

प्रार्थी व्यक्ति उदास अपने घर लौट गया। अगली वर्षा ऋतुमें मेघ का एक खंड भी उस प्रदेशके आकाशपर नहीं आया। वर्षाके अभावमें पशुओंका खाद्य वनस्पति-तृण धरतीसे नहीं उगा। सूर्यातपसे पुराना तृण सूखकर निर्जीव हो गया। प्रदेशभरमें त्राहि-त्राहि मच गई।

राजपुरोहितोंने अनुष्ठानपूर्वक कुल-देवताका आवाहन किया।

'प्रजाजनके प्रति राजाकी ओरसे अन्याय हुआ है। हमारे परस्पर

परम विश्वस्त समाजकी चेतनामें सन्देह एवं अविश्वासका एक नया सूत्र प्रादुर्भूत हो गया है। उसका निराकरण होनेपर ही इस दैवी रोषका निवारण हो सकता है।' कुलदेवताने संकेत दिया और अन्तर्धान हो गया।

प्रधान राजपुरोहितने कुलदेवताके अभिप्रायको तुरन्त समझ लिया। उसने उस खोई हुई भेड़के स्वामीको बुलवाया और उसे तथा राजा एवं राजकीय चारकोंको साथ लेकर राजकीय पशुशालामें लुप्त धनकी खोज के लिए जा पहुँचा।

खोई हुई भेड़ राज-पशुओंके बीच पहचान ली गई।

'विश्वास एवं सद्भावकी सुरक्षाके लिए परमावश्यक है कि सन्देहकर्ता के सन्देहका सम्पूर्ण निराकरण तुरन्त किया जाय। सामान्य एवं असाधु ही पर नहीं, महान् एवं साधुपर भी यह दायित्व है कि वह किसीकी दृष्टिमें संदिग्ध होनेपर सन्देहके निराकरणका मुक्त अवकाश प्रस्तुत करे। राजा की भूल थी कि उसने दूसरे पशु-स्वामियोंकी शोधका अवसर तो इस व्यक्ति को दिया, किन्तु अपनी शालाके द्वार इसकी दृष्टिके लिए पूर्णतया मुक्त नहीं किये। यह तबसे अपनी भेड़की कल्पना राज-पशुओंके वर्गके बीच करता आया है और उस सुदृढ़ एवं निरन्तर कल्पना ही का यह चमत्कार है कि राज-पशुओंके बीच इसकी मृत्युंगता भेड़की सूक्ष्म आकृति मूर्त रूप लेकर स्थूलवत् यहाँ दृष्टिगोचर हो रही है।'

राजपुरोहितके इन शब्दोंके साथ ही वह भेड़ अदृश्य हो गई।

राजपुरोहितके निर्देशानुसार स्वल्प-सलिला स्रोतस्विनीके बीच एक प्रस्तरखंडसे रुका हुआ उस भेड़का शव खोज निकाला गया।

राजाने अपने पशु-धनमें-से सौ भेड़ें उस व्यक्तिको देकर अपने पूर्व अन्यायका प्रतिकार किया। अगले ही दिन इंद्रदेवने वहाँकी धरतीको जल-वर्षासे प्लावित कर दिया।

× × ×

इस कथाके आधारपर वेदोंकी किसी ऋचाका सर्जन हुआ या नहीं यह कोई वेद-पारंगत विद्वान् ही बता सकते है।

मोतियोंकी खेती

अन्न और वस्त्रके आगे जब मनुष्योंको और भी ऊँची सम्पदाओंकी आवश्यकता हुई तो देवताओंने एक विशेष उपजाऊ देशके लोगोंको मोतियों के कुछ दाने भेंट किये। देवताओंने उन्हें बताया कि अपने खेतोंमें इन मोतियोंकी खेती करके इनके द्वारा वे लोक-परलोककी सभी सम्पदाएँ प्राप्त कर सकेंगे।

मनुष्योंने अपने अन्नके खेतोंमें इन मोतीके दानोंको भी बो दिया। अन्नके साथ-साथ इन मोतीके दानोंसे भी अंकुर उगे और यथासमय इनकी भी बालें पक कर तैयार हो गयीं। एक-एक मोतीके पौदेमे दस-दस बालें, और एक-एक बालमें सौ-सौ मोती लगे। मोतियोंकी इस असाधारण फसल से लोगोंके हर्षका पारावार न रहा।

फसल कटनेके त्यौहारका दिन आ पहुँचा। लोगोंने अबकी बार चौगुने समारोहके साथ फसलके देवताकी पूजा की और अपने-अपने खेतोंमें फसल काटने जा पहुँचे। उन्होंने बहुत यत्नके साथ चुन-चुन कर पहले मोतियोंकी बालोंको ही काटा और उन्हें बहुत सम्हाल कर अलग रख लिया। इसके पश्चात् उन्होने अन्नकी कटाई की। अन्न उन्होंने अपने अन्न-भंडारोंमें भर लिया और मोतियोंको अलग कपासके थैलोंमें भरकर उनसें देश-देशान्तर और लोक-लोकान्तरके साथ व्यापारकी तैयारियाँ करने लगे।

किन्तु उन किसानोंमें एक ऐसा भी था जिसने अपना खेत बिल्कुल नहीं काटा। जब सबकी फसल कट कर घर आ गयी तब एक रात उसने अपने पके–खड़े खेतमें आग लगा दी। दूसरी सुबह उसके खेतमे जली हुई राख की एक तहके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था।

लोगोंने अपनी मोतियोंकी सम्पत्तिसे देश-देशान्तर और लोक-लोकान्तर-से व्यापार किया और वहाँसे बहुत-सी नयी-नयी सम्पदाएँ अपने घरोंको ले आये।

अगली फसल बोनेके समय उन्होंने अपने बीजके रूपमें सुरक्षित मोतियोंको बोनेके लिए निकाला, किन्तु उनके आश्चर्य और दुःखकी सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि उन मोतीके दानोंसे मोतीकी आब बिलकुल जाती रही थी और उनके ऊपर अरक्षित अन्नकी तरह घुनके कीड़े भी लग गये थे।

उन किसानोंकी चिन्ता-सभामें उपस्थित होकर उस एक किसानने ही उन्हे सान्त्वना देते हुए उनका समाधान किया।

'बन्धुओ, चिन्ताकी उतनी बड़ी बात नहीं है। मेरे खेतमें अबकी फसल-पर शुद्ध मोतियोंकी ही बालें लगेंगी। पिछली फसलमें अन्नके बीच जो मोतियोंके दाने उगे थे उनका केवल आकार और ऊपरी चमक ही मोतियोंकी थी और उनके भीतरका अत्यल्प अंश छोड़कर अधिकांश पदार्थ अन्नका ही था। अन्नकी फसलके बीच शुद्ध मोती उग भी कैसे सकते हैं। मेरे खेतमें जले हुए अन्नकी खादके नीचे मोतियोंके नन्हें बीज दबे पड़े हैं। वर्षा होते ही उनके अंकुर फूट निकलेंगे और मेरे खेतमें मोतियोंकी पहली फसल तैयार हो जायगी। उन मोतियोंसे आप देश-देशान्तर और लोक-लोकान्तर में व्यापार कीजिएगा और वहाँके अपने उन व्यापारियोंका ऋण भी चुकाइएगा जिन्हें आप भूलसे उनकी बहुमूल्य वस्तुओंके बदले अपने कच्चे, अन्नके मोती दे आये हैं।'

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि इस युगमें मोतियोंकी खेती धरतीसे उतरकर समुद्रमें पहुँच गयी है क्योंकि मनुष्यको अब और भी ऊँची ऐसी सम्पदाओंकी आवश्यकता आ पड़ी है जो उन मोतियोंसे नहीं खरीदी जा

सकती। उन उच्चतर सम्पदाओंकी ख़रीदके लिए और भी ऊँची चालके मोतियोंकी उपज करना आवश्यक है। कथागुरुकी चिन्ता है कि आजके युगमें कितने और कौन-से ऐसे व्यक्ति निकलेंगे जो उन नये मोतियोंकी खेतीके लिए अपने अन्न और धनके खेतोंकी खड़ी फसलोंमें आग लगानेके लिए तैयार होंगे ! निःसन्देह जिस दिन इस पृथ्वीपर उन नयी चालके मोतियोंकी खेती यथेष्ट मात्रामें होने लगेगी उस दिनसे पृथ्वी पर अन्नकी आवश्यकता न रह जायगी, क्योंकि तब मनुष्य किसी रहस्यमयी रीतिसे जीवनकी उन आवश्यकताओंको सीधे ही प्राप्त करने लगेगा जिनका एक अत्यल्प अंश ही वह अभी अन्न और धनके माध्यमसे प्राप्त करता है।

बड़ी खोज

एक राजकुमारी अपनी कुछ सहेलियों और परिचारिकाओंके साथ पर्यटनको निकली। उसके रात्रि-कालीन पड़ाव कभी दीप-मालाओंसे जगमगाते भव्य भवनोंवाले नगरोंके छोरमें पड़ते, कभी छोटे ग्रामोंके पथिकालयोंमें, तो कभी-कभी निर्जन, घने वनके किसी विशाल वटके नीचे भी पड़ जाते थे।

एक रात उनका पड़ाव ऐसे ही एक वनमें पड़ा। अगले दिन उठकर जब उस दलने आगे प्रस्थानकी तैयारी की तो पाया कि राजकुमारीका बहुमूल्य मोतियोंका हार उसके गलेसे ही बिछुड़कर कहीं खो गया था।

हारकी खोज प्रारम्भ हुई। निःसन्देह उस वनमें आस-पासकी भूमि पर ही कहीं गिरकर वह खोया था। जबतक हार न मिले, आगेकी यात्रा स्थगित ही थी।

दुपहरी चढ़ आई, किन्तु हार न मिला। राजकुमारी एक ओर गहरी चिन्तामें मग्न-सी बैठी थी। अन्तमें उसने सभी सहेलियों-परिचारिकाओं को बुलाकर एकत्र किया और कहा—'तुम सब बड़ी मूर्ख हो, जो उस निर्जीव मोतियोंके हारकी खोजमें इतनी अन्धी हो रही हो। उन मोतियोंसे अधिक मूल्यवान् क्या कोई दूसरी वस्तु तुम्हे यहाँ नहीं दिखाई दी? तुम्हारी आँखें बन्द नहीं हैं तो तुम सभीने उसे देखा है। जाओ, उस निष्प्राण हारकी चिन्ता छोड़कर संसारके सर्वाधिक मूल्यवान् उस रत्नको ही तुम मेरे लिए खोज लाओ।'

राजकुमारीके इस आदेशको सुनकर सभी अनुचारिकाएँ हत-बुद्धि रह गईं। वास्तवमें उन मोतियोंसे अधिक मूल्यवान् कोई रत्न उन्होंने उस वनमें नहीं देखा था। राजकुमारीका वह हार ही संसारके सर्वाधिक मूल्यवान् मोतियोंका माना जाता था।

राजकुमारीने अबकी बार मुसकराते हुए अपने स्वरमें माधुर्यका भरपूर पुट देकर कहा—'मेरे और तुम सबके लिए मोतियों और रत्नोंसे बढ़कर भी कोई वस्तु है। मैंने तुमसे अभी तक खुलकर चर्चा नहीं की, किन्तु अपने लिए उसीकी खोजमें मैं तुम्हें साथ लेकर निकली हूँ। पार्थिव आभूषणों-अलंकारोंकी प्राप्ति और उन्हींके लिए पारस्परिक स्पर्धामें तुम लोग इतनी अन्धानुकरणशील हो गई हो कि उनसे अधिक मूल्यवान् वस्तुको आँखोंसे देखनेपर भी उसकी ओर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता। जिस वस्तुकी मुझे आन्तरिक खोज थी, वह आज मेरी आँखोंके सामने आकर मेरे हृदयमें स्थापित हो चुकी है, यद्यपि उसका बाह्य रूप इस वनके वृक्षोंकी ओटमें कहीं ओझल हो गया है। मेरे प्रति अपने स्नेह और औदार्यके नाते क्या तुम अविलम्ब उसे खोज नहीं निकालोगी? उस खोजके साथ ही सम्भव है वह हार भी तुम्हें वहीं मिल जाय।'

राज-बालाओंको अब राजकुमारीका संकेत और अभिप्राय समझते देर न लगी। उन सभीने एक तरुण लकड़हारेको वनमें लकड़ी काटते और फिर उसे बटोरकर एक ओर जाते देखा था। उन्हें ध्यान आया कि निःसंदेह वह संसारका सर्वाधिक सुन्दर युवक था।

सूर्यास्तसे पहले ही उन्होंने उस युवकको खोज लिया। उसी वनके अञ्चलमें वह एक कुटिया बनाकर अपने वृद्ध माता-पिताके साथ रहता था। राजकुमारीको अपनी सबसे बड़ी खोजका इष्ट-जन मिल गया। राजकुमारीका मुक्ताहार भी लकड़ियोंके गट्ठरमें एक लकड़ीमें लिपटा हुआ मिल गया। हारके मोती उसने अपनी संगिनियोंको बाँट दिये।

× × ×

इस राजकुमारी और इसके खोजे हुए प्रियजनकी उपर्युक्त कथा आपके लिए नई हो सकती है, किन्तु उनके नाम आपके सुपूर्व-परिचित हैं। दुनिया

जानती है कि राजकुमारीकी यह खोज इतनी आत्मीय अतः समर्थ थी वि
कालान्तरमें मृत्युके देवता यमराजके हाथोंसे भी वह उसे मुक्त करा ला
थी। और, जैसा राजकुमारीने अपनी अनुचारिकाओंसे कहा था, क्य
आज हम सबके सम्बन्धमें यह सत्य नहीं कि हम अपनी खोई हुई कुछ
एक निर्जीव वस्तुओंकी खोजमें स्वयं इतने खो गये हैं कि आँखों-दीर्ख
अधिक मूल्यवान् एवं आराध्य वस्तुकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता ?

दान और दुआ

एक ग़रीब फ़क़ीरको राजाने दस हज़ार अशर्फियोंकी थैली भेंट स्वरूप भेजी।

फ़क़ीरने ईश्वरके दरबारमें राजाके लिए दुआ माँगी। उसी रात ईश्वरका दूत राजाके पास गया और उससे कहा कि ईश्वरने फ़क़ीरकी दुआसे एक खुशीकी बख्शीस तुम्हारे लिए मंज़ूर की है।

दूसरे दिन राजाका मन्त्री फ़क़ीरके पास गया और बोला—'अगर मैं दस हज़ार अशर्फियोंकी भेंट देनेकी सिफारिश राजासे न करता तो वह भेंट तुम्हारे पास कभी न पहुँचती।'

फ़क़ीरने मन्त्रीके लिए ईश्वरके दरबारमें दस दुआएँ माँगी। उसी रात ईश्वरके फ़रिश्तेने मन्त्रीके पास आकर बताया कि ईश्वरने तुम्हारे लिए दस खुशियोंकी भेंट मंज़ूर की है।

तीसरे दिन राजाका दरबान फ़क़ीरकी कुटियामें गया और बोला—'अगर मैं राजाके दरबारमें उस आदमीको, जो आपकी तंगी-ग़रीबीका हाल राजाको सुनाने आया था, न जाने देता तो वह भेंट आपको कभी नहीं मिल सकती थी।'

फ़क़ीरने दरबानके लिए ईश्वरके दरबारमें सौ दुआएँ माँगी। उसी रात उसी तरह ईश्वरके फ़रिश्तेने उसके पास आकर उसके लिए ईश्वरके दरबारमें मंज़ूर हुई सौ खुशियोंकी खुश-खबरी दी।

चौथे दिन दरबानका कहा हुआ वह आदमी स्वयं फ़क़ीरके पास आया और उसने अपने अहसानकी बात कह सुनाई। फ़क़ीरने उसके लिए एक हज़ार दुआएँ माँगी और उसी रात ईश्वरके फ़रिश्ते-द्वारा ईश्वरके हाथों एक हज़ार खुशियोंकी मंजूरीकी खबर उसे भी मिल गयी।

पाँचवें दिन फ़क़ीरकी पत्नीने सारा भेद खोलते हुए कहा—'मैंने ही उस आदमीको तुम्हारी और परिवारकी भूख और तंगीका हाल सुनाकर राजाके पास फ़र्याद लेकर जानेकी प्रेरणा दी थी।'

फ़क़ीरने अपनी पत्नीके लिए दस हज़ार दुआएँ ईश्वरके दरबारमें माँगी और उसी प्रकार दस हज़ार ख़ुशियोंकी भेंट उसके लिए भी मंजूर हो गयी।

राजाको फ़क़ीरकी इन सब दुआओं और उनके फलोंका समाचार मिला तो वह बहुत असंतुष्ट हुआ। फ़क़ीरको उसने अपने दरबारमें हाज़िर होनेकी आज्ञा दी।

'मैंने आपको इतनी बड़ी भेंट अपने पाससे दी उसका शुकराना आपने सिर्फ़ एक ख़ुशीकी सिफ़ारिश करके अदा किया और बीचके दूतों और कर्मचारियोंको दस-दस गुनी करके दस हज़ार तक ख़ुशियाँ दिलाईं! आपके इस अनुचित व्यवहारके लिए आपको सज़ा क्यों न दी जाय?' राजाने रोष-भरे स्वरमें कहा।

'राजा तू भूलता है। तेरी एक ख़ुशीकी सलामती और पायदारीके लिए यह ज़रूरी था कि मैं तुझसे नीचेवाले अमलों और सिफ़ारिशियोंको सिलसिलेवार दस-दस गुनी दुआएँ देता। अगर तुझे यह पसन्द नहीं है तो मैं अभी उन दुआओंका सिलसिला उलट सकता हूँ।' इतना कहकर फ़क़ीरने आँखें बन्दकर ईश्वरके दरबारमें कुछ प्रार्थना की और अपने घरको लौट आया।

उसी रात राजाने स्वप्नमें देखा कि अपने पंच मंज़िला महलके जिस सबसे ऊपरके मण्डपमें वह सोया हुआ है उसके नीचेकी चार मंज़िलें ग़ायब हो गयी हैं और अधरमें लटके हुए उस मंडपसे नीचे उतरनेका उसके लिए कोई मार्ग नहीं है। गिरनेके भय और मृत्युकी आशंकासे राजा सोते-सोते चिल्ला उठा। सहायताके लिए दौड़कर आये हुए सेवकोंको भेजकर उसने उसी समय फ़क़ीरको बुला भेजा।

फ़क़ीरके आते ही राजाने उसके पैर पकड़ लिये और राजाकी प्रार्थना-पर उसने अपनी पहली दुआओंको फिर यथावत् उलट दिया ।

× × ×

राजाके महलकी सबसे ऊपरी अटारी केवल एक खम्भेपर खड़ी हुई थी, और उससे नीचेकी मंज़िलें क्रमशः दस, सौ, हजार और सबसे निचली और चौड़ी मंजिल दस हज़ार खम्भोंपर टिकी थी । राजाके निजी कक्षके एक खम्भेकी संभालके लिए नीचेके इतने सब खम्भे आवश्यक थे और फ़क़ीरकी दुआओंकी सार्थकता अब दृष्टिसे छिपी न थी ।

उपकृतके आँसू

किसी गाँवमे एक अत्यन्त दुराचारी और आततायी व्यक्ति रहता था। सारा गाँव उसके अत्याचारोंसे दुखी था। किन्तु किसीका साहस नहीं था कि उसके विरुद्ध कुछ कर सके। उस व्यक्तिके कारण एक तरहसे वह सारा गाँव देशभरमे बदनाम हो गया था।

एक बार उसने गाँवके मन्दिरसे देवताकी स्वर्णजटित मूर्ति चुरा ली और मन्दिरकी देश-विख्यात नर्तकीका अपहरण करके उसे कहीं अन्यत्र छिपा आया। अपने धर्म और उपासनाके साधनोंपर उसे दुष्टका यह प्रहार ग्रामवासियोंको सहन न हुआ और विवश होकर उन्होंने गाँवके कुछ लोगोंको राजाके दरबारमे गुप्त रूपसे भेजकर उस व्यक्तिको दण्ड देनेकी प्रार्थना की। राजाने आवश्यक कार्यवाहीका आश्वासन देकर उन लोगोंको लौटा दिया।

कुछ दिन बाद राजा अपनी प्रजाके सुख-दुःखका निरीक्षण करता हुआ उस गाँवमें आया। लोगोंने यथोचित उत्साह और सत्कारके साथ उसका स्वागत किया। गाँवमें राजाका दरबार लगा। राजाकी आज्ञासे उस आततायी व्यक्तिको भी दरबारमें उपस्थित होना पड़ा। लोगोंने देखा, राजाके सम्मुख आकर उस व्यक्तिके चेहरेमें भय या विनयकी कोई भी चेष्टा नहीं थी। उसकी स्वाभाविक क्रूरता यथावत् उसकी भाव-भंगिमामें विद्यमान थी।

'तुमपर तुम्हारे ग्राम-वासियोंके बहुतसे आरोप हैं', राजाने उस व्यक्तिको लक्ष्यकर कहा—'और उन्हींका न्याय करनेके लिए मैं आज यहाँ आया हूँ।'

'न्यायकी जितनी शक्ति आपके हाथमें है उसका प्रयोग आप करेंगे

ही महाराज, इन ग्रामवासियोंके आरोपोंपर आप मुझे जो दण्ड देना चाहें दे सकते हैं।' अभियुक्तने अविचलित स्वरमें कहा।

'और मेरा न्याय यही है कि मैं तुम्हारे सभी अपराधोंको क्षमा करता हूँ और तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम अपनी इच्छित आवश्यकताओके लिए जो-जो वस्तुएँ चाहो मुझसे इसी समय माँग सकते हो। वे सब तुम्हें राज-कोषसे और राज-शक्ति द्वारा प्राप्त करके दी जायँगी।'

वह व्यक्ति कुछ क्षणोंतक मूर्तिवत् स्थिर, अप्रभावित-सा अपने स्थलपर खड़ा रहा; फिर आगे बढ़ा और राजाके पैरोंपर गिरकर फूट-फूटकर बालकोंकी भाँति हिचकियाँ ले-लेकर रोने लगा। उस आवेशमें सार्थक शब्द एक भी उसके मुखसे न निकल पाया। लोग इस अप्रत्याशित, असाधारण दृश्यको मन्त्र-मुग्धसे देखते रह गये। सुख, सहानुभूति और आह्लादके आँसुओंसे सभीकी आँखें भीग उठीं।

अगले दिन उस व्यक्तिने मंदिरकी स्वर्णजटित मूर्ति ही नहीं, अपने और पड़ोसके गाँवोंके बहुतसे लोगोंका अपहृत धन भी उन्हें लौटा दिया और अपनी शेष संचित सम्पत्ति दीन-दुखियोंके सहायतार्थ समर्पित करके स्वयं अत्यन्त सादा जीवन बिताने लगा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मन्दिरकी नर्तकीको भी उसने सम्मानपूर्वक अपने स्थानपर पहुँचा दिया। उसका जीवन-क्रम ही उस घटनाके दिनसे एकदम पलट गया और उसकी साधुताकी चर्चा दूर-दूरतक फैलने लगी। बहुतसे लोग उसके भक्त बन गये।

एक दिन उसके भक्तोंने उसके जीवनमे घटित उस परिवर्तनकारी असाधारण घटनाके संबन्धमे जिज्ञासा करते हुए कुछ प्रश्न पूछ दिये। उनका उत्तर देते हुए उसने कहा—

'उस दिनकी घटनासे मेरे भीतर कोई साधुता-मूलक परिवर्तन नहीं हुआ था और मेरे व्यवहारमें कोई नई परिवर्तन-परक बात नहीं थी।

राजाके हाथों अप्रत्याशित क्षमा पाकर मैने ठीक वैसा ही व्यवहार किया था जैसा उसके हाथों दण्डसे बचनेके लिए करता, यदि उस दण्डसे बचनेकी मुझे तनिक भी आशा पहले होती। मेरे उस व्यवहारमे अन्तर प्रकारका नहीं केवल कुछ क्षणोंके आगे पीछेका ही था।'

और यहाँपर मेरे कथागुरुका प्रश्न है कि भौतिक या पर-भौतिक सत्ताके सामने मनुष्यके समस्त विनय, श्रद्धा, कृतज्ञता, अश्रुदान, पद-लुण्ठन और आत्म-समर्पणकी व्याख्या क्या इस कथामे नहीं है ?

भूखा गाँव

राजमहलके पड़ोसमें कुछ ही दूरीपर एक गाँव था। एक बार उस गाँवमें भयंकर अकाल पड़ा। अन्नका एक दाना भी उसके खेतोंमें नहीं उगा। लोगोंके भूखों मरनेकी नौबत आ पहुँची। फलस्वरूप गाँवमे ग़दर मच गया। जिन कुछ लोगोंके पास पिछली फसलका अन्न बचा छिपा रक्खा था, उन्हे लूट लिया गया। वह लूटका अन्न भी कितने दिन काम दे सकता था! सुयोग वश गाँववालोंका ध्यान राजाकी गौशालापर गया, जो उनके गाँव और राजमहलके बीचके कुछ खेतोंमें बसी हुई थी। गाँव वालोंने रातोंरात गौवोंके दूधकी चोरीका क्रम अपनाया। उन दिनों राजाके पास फ़ौज-पुलिस और पहरे जैसे कोई साधन तो होते न थे; केवल अपनी सम्पन्नता और सभी लोगोंको सुखी बना सकनेकी शक्तिके कारण ही राजा राजा कहलाता था।

गाँववाले अब हर रातको गोशालामे जाते और गौओंका दूध दुह कर पी आते। कुछ दिन बाद राजाके ग्वालोंने राजाको इस बातकी सूचना दी। राजाको गाँवके अकालका पता लगा और—क्रोधका उसके पास कोई काम ही न था—गाँववालोंकी इस दशासे उसे चिन्ता हुई। अपने कुछ मंत्रियोंको उसने आज्ञा दी कि वे उस गाँववालोंके कष्टोंकी ठीक-ठीक जाँच करके उनके निवारणके लिए अपने सुझाव प्रस्तुत करें।

मंत्रियोंने गाँवका निरीक्षण कर राजाको परामर्श दिया कि गाँववाले रोटीके टुकड़े-टुकड़ेको तरस रहे हैं, सबसे पहले तुरन्त ही उनके लिए रोटीकी व्यवस्था होनी चाहिए।

अगली सुबह राजाने सारे गाँवके खाने भरको रोटियाँ उस गाँवमें भिजवा दीं और वे उन्हें प्रत्येकको दिनभरकी आवश्यकताके अनुसार बाँट दी गयीं।

किन्तु उस रात भी गाँववालोंने राजाके दूधकी चोरी की। खोज करनेपर पता लगा कि लोगोंने उन रोटियोंको अगले दिनके लिए सुरक्षित रख कर पिछले क्रमके अनुसार चोरीके दूधसे ही अपना पेट भरनेमे अपना विशेष हित समझा था।

मंत्रियोने अपना संशोधित परामर्श राजाको दिया कि एक दिनकी रोटियोंके साथ-साथ अगले दिनकी रोटियोका आश्वासन भी गाँववालोंको मिलना चाहिए। तभी वे उदरसे तृप्त और मनसे निश्चिन्त होकर चोरीसे हाथ खींच सकते हैं।

अगले दिन राजाने रोटियोंके साथ यह घोषणा भी गाँवमें भेज दी कि प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन भरपेट रोटियाँ राजमहलोंसे मिलती रहेंगी। लोगोंने उस दिन भी रोटियाँ ले लीं, किन्तु उस रात भी दूधकी चोरीमें उन्होंने कोई कमी नहीं की।

खोज करनेपर पता लगा कि उस दिनकी रोटियोंको भी लोगोंने अगले दिनोंके लिए रख लिया था, क्योंकि रोटियाँ कई दिनों तकके लिए सुरक्षित रक्खी जा सकती थीं और निश्चिन्तताके लिए यह आवश्यक भी था कि एकसे अधिक दिनोंके लिए उनका संग्रह कर लिया जाय।

मंत्रियोंके पुनः संशोधित परामर्शके अनुसार अगले दिन राजाने छकड़ोंमे भरकर कई गुनी और बे-हिसाब रोटियाँ उस गाँवमें भेज दीं। लोगोंने कई-कई दिनोंकी आवश्यकता भरकी रोटियाँ अपने घरोंमें भर लीं।

किन्तु अगली रात भी उन्होंने विधिवत् दूधकी चोरी की। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि उस दिन उन छकड़ोंमेंसे कुछ लोगोंने बहुत अधिक और कुछने अपेक्षाकृत कम अधिक दिनोके लिए रोटियाँ समेट ली थीं। कम अधिक रोटियाँ लेनेवाले लोगोंने बहुत अधिक लेने वालोंकी बुद्धिमत्ताका अनुमान लगा लिया था और वे भी उन्हींके बराबर अपना संग्रह बढ़ा

लेना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने उस दिन भी अपनी रोटियोंका संग्रह घटाना ठीक न जान कर दूधकी चोरी की थी।

सबके पास रोटियोंका एक समान संग्रह हो जाय, यह एक अति कठिन-साध्य बात थी, क्योंकि कोई भी अपने संग्रहकी सच्ची थाह देनेके लिए उद्यत नहीं था।

राजाने मंत्रियोंसे परामर्श किया, पर कोई भी संतोषजनक संशोधन प्रस्तुत न कर सका। अन्तमें एक अन्य दरबारीने इस समस्याको सुलझानेका भार अपने ऊपर लिया।

अगले दिन वह एक दिनकी आवश्यकता भरको रोटियाँ लेकर उस गाँवमें पहुँचा और लोगोंके घरोंमे रोटियाँ बाँटनेके बदले उसने उन्हे आदेश दिया कि वे सब गाँवके बड़े मैदानमें ज्योनारकी पंगत बनाकर बैठ जाँय। उसने यह भी कहा कि जिनके पास पहलेकी कुछ रोटियाँ बची हों वे अपने लिए उन रोटियोंको भी साथ ला सकते हैं और बासी रोटी खानेवालोंको साथके लिए गुड़की एक-एक डली दी जायगी। इस अभिप्रायसे वह राजमहलसे एक बोरी गुड़ भी लेता आया था।

सभी लोगोंको ज्योनारकी पंगतमें बैठना पड़ा। कुछ लोग गुड़के लालचमें अपने घरसे ही खाने भरको रोटियाँ निकाल लाये। शेष ख़ाली हाथ ही पंगतमें आ बैठे। इन ख़ाली हाथ आनेवालोंमें कुछ सचमुच ऐसे भी थे जिनके घरकी रोटियाँ पूरे यत्नसे न रखनेके कारण सड़ या सूख गयी थीं या दूसरोंने छल-बल पूर्वक उनका अपहरण कर लिया था। पूरी बात यह कि उस दिन सबने पंगतमें बैठकर भर पेट रोटियाँ खाईं, कुछने घरकी बासी, गुड़के साथ और कुछने राजमहलकी ताजी, बिना गुड़की।

और उस रात गाँववालोंने राजाके दूधकी चोरी नहीं की, क्योंकि पहली बार उनके पेट इतने भर गये थे कि उनमें चोरीका दूध पीनेकी

जगह नहीं थी। रोटियोंके अति संचय, संग्रह और अपहरणका क्रम भी उस दिनसे घटना प्रारम्भ होकर शीघ्र ही समाप्त हो गया।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि आज फिर उसी प्रकारका एक भूखा गाँव दुनियाके किसी कोनेमें बसकर विस्तार पकड़ता जा रहा है और उसके उपचारके लिए रोटियोंकी नहीं, रोटियाँ जीमनेकी एक पंगत बिठानेकी आवश्यकता सर्वप्रथम है। कथागुरुका संकेत है कि 'रोटी' और 'रोटीकी पंगत' के बीचके न दीखते-से, किन्तु महान् अन्तरमें इस भूखे गाँवकी समस्याका रहस्यपूर्ण हल समाया हुआ है। पूर्व संचित या नवप्राप्त वस्तुका तुरन्त उपयोग करनेका अभ्यास जबतक लोगोंको न हो जायगा तबतक अतृप्ति और अभावसे उनका पीछा नहीं छूट सकेगा।

भिखारी और चोर

मेरी वाटिकाके द्वारपर वह आया और बोला—'बाबूजी, अपनी बगीचीसे कुछ फूल मुझे ले लेने दीजिए।'

फटे-पुराने कपड़ोंसे अस्त-व्यस्त रूपमें तन ढके उस तरुण बालकको ध्यानपूर्वक देखते हुए मैंने पूछा—'तुम कौन हो ?'

'भिखारी', उसका उत्तर था, और उसमें सन्देहका कोई स्थान न था।

'भिखारियोंको ऐसी चीज़ न माँगनी चाहिए। तुम चाहो तो मैं तुम्हें एक पैसा या एक रोटी दे सकता हूँ।' मैंने कहा।

'ये तो मुझे दूसरे घरोंसे पेट भरने भरको मिल जाती हैं।' उसने कहा और असन्तुष्ट होकर चला गया।

अगले दिन मालीने सूचना दी कि बगीचीमें कुछ फूलोंकी चोरी हुई है। मैंने पहरेकी व्यवस्था कर दी। किन्तु चोरीका क्रम न रुका। हर रात किसी समय कुछ फूल टूटकर ग़ायब हो जाते।

एक दिन मैंने उसी लड़केको बाज़ारमें देखा। सड़क किनारे बैठा वह फूलोंकी मालाएँ बना रहा था।

'तुम चोर हो' मैंने पास जाकर उसे पकड़ा।

'बिलकुल नहीं बाबूजी, यह आप कैसी बात कहते हैं! मैं तो भिखारी हूँ। भीखके पैसे बचाकर कुछ फूल ख़रीद लाता हूँ और मालाएँ बनाकर उन्हें बेच देता हूँ। कुछ दिनों बाद मुझे भीख माँगनेकी ज़रूरत न रह जायगी। मुझे चोर बनानेका आपके पास कोई सबूत है ?'

बालकके स्वरमें कड़क थी। उसकी चोरीका मेरे पास कोई सबूत नहीं था। कई लोग हमारी बातचीत सुन रहे थे। ऐसी बे-सबूतकी बात कह

कर मैं उनकी दृष्टिमें स्वयंको लज्जित अनुभव कर रहा था। चुप होकर मै चल दिया।

कुछ दूर पहुँचकर मैंने देखा—बालक मेरे पीछे आ गया है। एकान्त पाकर उसने मुझसे कहा—'बाबूजी, मैं हूँ तो वही भिखारी और आपकी भीखपर ही पनप रहा हूँ। अन्तर इतना है कि आप अपने हाथसे उठाकर दे देते तो दुनियाके सामने भी आपका कृतज्ञ होता, किन्तु अब अकृतज्ञ हूँ।'

मेरा माथा झुक गया। फूलोंकी हानि तो मेरे लिए कोई हानि नहीं थी लेकिन एक बहुत बड़ी वस्तु मेरे हाथसे निकल गई थी और उसमे अपराध मेरा ही था।

नया बल

नगरके चुने हुए हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ व्यक्तियोंका एक दल पर्वतकी चोटी की ओर अभियान कर रहा था। प्रत्येकके कन्धेपर उसके बलका द्योतक, प्रतीकरूप छोटा या बड़ा एक पत्थर था। इस चढ़ाईमे कुछ लोग अपने आगेवालोंको पीछे छोड़कर आये थे, कुछ अपने पीछेवालोंसे भी पीछे पड़ गये थे। उन सभीका अभिप्राय शीघ्रातिशीघ्र पर्वतकी सबसे ऊँची चोटीके चौड़े धरातलपर बने मन्दिरपर पहुँचना था। चढ़ाई महीनोंकी थी।

आखिरकार उस दलके सर्वाधिक बलिष्ठ कुछ व्यक्ति एक दिन पर्वतकी चोटीपर पहुँच गये और उन्हें शिखरपर बने हुए विस्तृत मन्दिरके अधिकारियोंने सत्कार-सम्मानपूर्वक अलग-अलग बँगलोंमें ठहरा दिया। दूसरे चढ़ाकोंके पहुँचनेमे, उनकी चालको देखते हुए, अभी दिनों और महीनों-की देर थी। उनमेंसे प्रत्येककी चिन्ता थी कि वह किस प्रकार नया बल बटोरकर शीघ्र-से-शीघ्र लक्ष्यपर पहुँच जाय। अपनी इस चिन्ता और चिन्तन-सामर्थ्यके अनुरूप प्रत्येक पर्वतारोही नया बल और नया साहस जुटानेका कुछ-न-कुछ उपचार करता हुआ आगे बढ़ रहा था। राहमें चढ़ाईकी थकान उतारनेके लिए मंज़िल-मंज़िलपर मालिश और स्नान करानेवालोंके शिविर भी लगे हुए थे। ये यात्री आवश्यकतानुसार इनका भी आश्रय लेते थे।

एक दिन पर्वत-पथके सभी चढ़ाकोंने कुतूहल-भरी दृष्टिसे देखा कि आरोही दलके बहुत पिछड़े हुए वर्गका एक व्यक्ति तेज़ीके साथ उन्हें छोड़ता हुआ आगे बढ़ रहा है; उसके कन्धेपर उसके बलका द्योतक कोई भार नहीं है और स्पष्टतया यह भारहीनता ही उसकी तीव्रगतिकी सहा-यिका है। स्पष्ट था कि उसने अपना पौरुष-प्रतीक कन्धेका पत्थर राहमें

ही कहीं फेंक दिया है। उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस पौरुष-चिह्नसे रहित व्यक्तिके पर्वत-शिखरपर पहुँचनेका अभिप्राय ही क्या हो सकता है !

दिनों और महीनोंकी कष्टसाध्य चढ़ाईके पश्चात् जब सभी पहुँचने वाले आरोही पर्वत-शिखरपर पहुँच गये तब शिखर-मन्दिरके विस्तृत उद्यान में आयोजित स्नेह-सभामें आगे-पीछे आनेवाले सभी पर्वतारोहियोंका पुनर्मिलन और परिचय हुआ। वहाँ उन्होंने कुछ आश्चर्यके साथ देखा कि अपने पौरुष-भारको फेंककर तीव्र गतिसे आगे आनेवाले उनके स्वल्प-सामर्थ्य साथीको ही मन्दिरके अधिष्ठाताने अपने शक्ति-भण्डारका प्रधान अधिकारी नियुक्त कर दिया है।

मन्दिरके अधिष्ठाताने अभ्यागतोंका स्वागत करते हुए उनके इस आश्चर्यका भी समाधान किया।

'इस शिखर-मन्दिरमें शक्ति, सौन्दर्य और बुद्धिमत्ताके तीन प्रमुख भण्डार हैं, जिनकी धाराएँ नीचे बसे नगरोंके निर्वाहके लिए यहींसे प्रवाहित होती हैं। आपके जिस स्वजनको हमने अपने शक्ति-भण्डारका अधिकारी नियुक्त किया है उसने ही अपने भीतर एक असाधारण एवम् सर्वथा नवीन प्रकारके बलका परिचय दिया है। नवीनतम बलका स्रोत बुद्धिमत्तामें ही है और उस सम्बन्धमें' अधिष्ठाताने क्षणभर रुककर विनोदभरी दृष्टि श्रोताओंपर डालकर कहा—'मैं आपसे पूछता हूँ कि यहाँतक पहुँचनेके लिए उन पत्थरके टुकड़ोंको कन्धोंपर उठाकर लानेकी सूझ या सलाह आपको किसने और कब दी॰।'

और कुतूहल, आश्चर्य एवम् आत्म-लज्जासे मिश्रित भावनाकी एक-एक मुसकान-रेखा सभी आरोहियोंके होठोंपर खिंच गयी !

पूर्ण भिक्षु

तीसरा प्रहर बीत चुका था। संघके सभी भिक्षु अपनी-अपनी झोलियाँ भिक्षान्नसे भरी लेकर लौट चुके थे। केवल एक तरुण भिक्षु 'अजितकाम' अभीतक नहीं लौटा था।

नियमित प्रतीक्षाकी अवधि पूरी करके संघनायक उपगुरुके आदेशसे सभी भिक्षु भोजनशालामें आ बैठे। वे भोजनकर उठ ही रहे थे कि अजितकामने वहाँ प्रवेश किया। उसकी झोली रीती थी।

उपगुरुकी प्रश्नभरी दृष्टिका अजितकामने उत्तर दिया—

'भिक्षा मैंने ली थी, थोड़ी, केवल अपनी उदरपूर्ति-भरके लिए। तदनन्तर कुछ नगरजनोंके साथ धर्म-चर्चामें लग गया। बीचमे समय होनेपर मैंने वह भोजन प्रसाद पा लिया। वार्तासे निवृत्त होनेपर अब यहाँ आया हूँ।'

सभी भिक्षुओंकी कुतूहल-तिरस्कारभरी आँखें अजितकामके मुखपर जा पड़ीं। अजितकामका यह कार्य नियम विरुद्ध ही नहीं, उसकी संकुचित स्वार्थ-वृत्तिका सूचक भी था।

'तुमने संघकी मर्यादाका उल्लंघन किया है अजित, हम तुम्हें अब अपने बीच नहीं रख सकेंगे।' उपगुरुके स्वरमें तीव्रताका पुट था।

उपगुरुके आदेशपर सभी भिक्षु प्रवचनशालामें एकत्र हुए।

'अजितकामको विदा देनेके लिए ही हम इस समय यहाँ एकत्र हुए हैं' उपगुरुका स्वर अत्यन्त कोमल और विनीत था, 'बहिष्कारकी भावना-के साथ नहीं, प्रत्युत अपनी नवोदित आन्तरिक श्रद्धा एवम् सम्मान भावना

की अंजलि लेकर। अजित बन्धुने आज हमारे धम्म संघकी अनुगति श्रेणीसे उत्तीर्ण होकर अग्रगतिकी श्रेणीमें प्रवेश किया है। जो वर्गके लिए—दूसरोंके लिए—माँगता है वह अनुग, अपूर्ण भिक्षु है और जो केवल अपने ही लिए माँगता है वही परम लोक-साधक पूर्ण भिक्षु है। अजितबन्धुका भिक्षु-पदका कार्य आजसे प्रारम्भ हुआ है और वह अब इस संघका अंग नहीं, यह संघ ही उसका अंग है।'

केवल भिक्षा

कम्बुराज नीलोपमके देशमें एक बार अकाल पड़ा। अन्नाभावसे प्रजाके भूखों मरनेकी नौबत समीप आ गयी।

नीलोपमकी दृष्टि पड़ोसके राज्य द्वीपकपर गयी। यह राज्य धन-धान्यसे परिपूर्ण था।

नीलोपमने द्वीपक-नरेशको संदेश भेजा कि वह उसकी अधीनता स्वीकारकर कर भेजनेकी व्यवस्था करे अन्यथा युद्धके लिए प्रस्तुत हो।

द्वीपक-नरेशने उत्तर भेजा कि उसे कम्बु-निवासियोंकी अकालजनित परिस्थितिसे सहानुभूति है और वह उनसे कुछ व्यापारिक सहयोगके बदले उन्हें खाद्यान्न देनेको सहर्ष प्रस्तुत है। द्वीपक-राज्यके कुछ कच्चे मालको व्यवहारोपयोगी वस्तुओंमें परिणत करके कम्बुनिवासी सहज ही अपनी रोटियाँ कमा सकते हैं। कम्बुराज इस उत्तरसे तिलमिला उठा। द्वीपक-नरेशके प्रस्तावकी स्वीकृति उसके लिए अत्यन्त लज्जास्पद और अपमान-जनक थी। द्वीपक-राज्यपर आक्रमणकी तैयारीके आदेश उसने उसी दिन अपनी सेनाको दे दिये।

उसी रात एक युवक याचक नीलोपमके महल-द्वारपर उपस्थित हुआ, भोजन और एक रातके आश्रयकी याचना लेकर। उसने बताया कि वह किसी राजकुलका ही वंशज है। देशाटन करते एक बटमारने उसका समस्त धन छीन लिया, तबसे वह इसी प्रकार माँगता-खाता अपने देशकी ओर जा रहा है।

'तुम ब्राह्मण नहीं, साधु नहीं, वृद्ध और पंगु भी नहीं फिर भी नीच भिक्षा वृत्तिसे अपना निर्वाह करते हो, यह तुम जैसे हृष्ट-पुष्ट व्यक्तिके लिए अत्यन्त अनुचित और अशोभन है' नीलोपमने तिरस्कार-मिश्रित स्वरमें कहा।

'भिक्षासे भिन्न अन्य कोई वृत्ति संसारमें नहीं है महाराज ! जो न्यून माँगता है, दाताका कृतज्ञ होता है और यथावसर लौटा देता है वह प्रथम कोटिका भिक्षु है; जो अधिक माँगता है, कृतज्ञ होता है किन्तु लौटाता नहीं वह मध्यम कोटिका; और जो अधिक माँगता है, कृतज्ञ नहीं होता वह लौटानेमे सर्वथा असमर्थ निकृष्ट कोटिका याचक है।'

नीलोपमको यह वृत्ति-विवेचना सुननेका अवकाश नहीं था। उसके आदेशसे एक भृत्यने याचकको एक बारका भोजन ला दिया और अश्वालय के एक कोनेमें सोनेका स्थान बता दिया।

अगली भोर वह याचक चला गया।

सातवें दिन कम्बुराजकी सेनाका पड़ाव द्वीपकगढ़के नीचे लग गया।

अनायास द्वीपकगढ़का द्वार खुला। कम्बु-सेना प्रत्याक्रमणकी आशंकासे समुद्यत हो गयी। किन्तु कुछ ही समय पीछे कम्बुराजने देखा, गढ़के भीतरसे आनेवाले सैनिकोंके पीछे युद्धके उपादान नहीं, किसी अन्य सामग्रीसे भरे छकड़ोंकी पंक्तियाँ ही थीं।

उन छकड़ोंमें कम्बुसेनाके लिए सुस्वादु भोजन था और उनके आगे था कम्बुमहल-द्वारका उस दिनका तरुण याचक शतवाहन—द्वीपक राज्य का युवराज।

'कम्बुराज, कम्बुवासियोंकी जीवन-रक्षाके लिए पर्याप्त धान्य शीघ्र ही हमारे अन्नागारोंसे पहुँचेगा—वह हमारा मधुर, सुकृत-जनित कर्त्तव्य होगा। उसके बदले यदि आपकी प्रजा हमें हमारी पूर्व प्रस्तावित औद्योगिक सहायता न देना चाहेगी तो भी हमें कोई आपत्ति न होगी। अभी हम आपके दलके आतिथ्यके लिए भोजन लाये हैं; पहले इसके ही उपयोगकी व्यवस्था कीजिए। तदनन्तर यदि आपकी युद्ध-क्रीड़ाकी ही इच्छा हो तो आगे हमारा यह दुर्ग है और आपकी सेनाके पीछे भी, वह देखिए, हमारी

सेनाकी कुछ टुकड़ियाँ पहुँच चुकी हैं।' कम्बुराजके सम्मुख अपने अश्वसे उतरकर खड़ा हुआ राजकुमार शतवाहन कह रहा था।

कम्बुराजने सम्मुख उपस्थित शतवाहनको देखा, फिर दृष्टि घुमाकर अपने दलको पीछेसे घेरनेवाली द्वीपक-सेनाको।

अगले ही क्षण नीलोपमका मस्तक शतवाहनके चरणोंपर झुक गया—पृष्ठ-पार्श्व-वर्ती दृश्यके आतंकसे नहीं; सम्मुख दर्शनके अलौकिक सौम्याकर्षणसे।

× × ×

एक महान् चक्रवर्ती धर्मोपदेशक भिक्षुके रूपमे शतवाहनका और उसके प्रमुख शिष्य, संघनायक कुलगुरुके रूपमे नीलोपमका नाम, मेरे कथागुरुकी टिप्पणीके अनुसार, अलिखित इतिहासके लेखेमें अंकित है।

दानका स्पर्श

मल्लिकाखण्डके महाराजा सलिलघोषको देव-धनपति कुबेरसे गाढ़ी मित्रता थी। उनका राज्य उस युगमें धरतीका सबसे अधिक समृद्ध राज्य था। महाराजके शौर्य-प्रतापके साथ-साथ उनकी बौद्धिक विलक्षणता भी इसके विशेष कारणोंमें गिनी जाती थी। उनके राज्यमें कोई भी तन या मनसे भूखा-नङ्गा नहीं था। विद्वान् और कलाकार अपनी सर्वोत्कृष्ट सेवाएँ प्रजा-जनसे कोई मूल्य लिये बिना उन्हें भेंट करते थे और महाराज मुक्त हस्तसे दान देकर उनका योग-क्षेम निबाहते थे। वे स्वयं कोषासन पर बैठकर प्रतिदिन यह दान-यज्ञ करते थे।

एक बार देवराज इन्द्रके कार्यसे महाराज सलिलघोषको कुछ कालके लिए स्वर्गपुरीमें रहना पड़ा। राज्यसे जाते समय वे महामंत्रीको आदेश दे गये कि दैनिक दान-यज्ञका कार्य यथावत् चलता रहे।

कोष-विभागके जिस अधिकारीको यह कार्य सौंपा गया उसे एक सप्ताहके भीतर ही महामन्त्रीने उस पदसे उतार दिया।

महाराजके कोषासनपर बैठ कर दान देते समय वह दान-पात्रोंसे संकल्प-वचनके रूपमें कहता था—'मैं यह धन अपने सम्पूर्ण स्नेह-सत्कार-सहित पत्र-पुष्प रूपमें आपको समर्पित करता हूँ।'

इस अधिकारीका संकल्प-वचन मंत्रिजनोंकी दृष्टिमें अत्यन्त आपत्ति-जनक, दम्भपूर्ण और भ्रामक था। उससे कहा गया कि वह महाराजका केवल एक नियुक्त कार्य-वाहक है और उसे अपने नहीं, महाराजके नामसे ही सुपात्रोंको दान देना चाहिए। किन्तु वह अधिकारी उसपर सहमत नहीं हुआ। विवश हो महामंत्रीको दूसरा दानाधिकारी नियुक्त करना पड़ा।

'महाराजके आदेशसे उनके स्नेह-सत्कार-सहित, पत्र-पुष्प रूपमें यह धन आपको समर्पित किया जाता है'—यह था मन्त्रिजनों-द्वारा निर्धारित संकल्प-वचन, जिसे यह दूसरा अधिकारी दानके साथ बोलता था।

कुछ ही वर्षोंमें विद्या-कला वर्गके इन साधकोंके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यमे ह्रासके लक्षण प्रकट दीखने लगे। मन्त्रियोंको चिन्ता हुई। दान-राशिकी मात्रा उन्होंने और बढ़ा दी। किन्तु धनसे अधिक समृद्ध होकर भी जनताके उस शिक्षक-वर्गका ह्रास बढ़ता ही गया।

महाराजको सूचना भेजी गयी। देव-राजसे कुछ समयका अवकाश ले वे तुरन्त अपने राज-नगरको आये। परिस्थितिका अध्ययन कर उन्होंने पूर्व-नियुक्त दानाधिकारीको पुनः कोषासनपर प्रतिष्ठित कर उसे ही वह कार्य करते रहनेका आदेश दिया। मंत्रि-जनोंकी आश्चर्य-चकित जिज्ञासाका समाधान करते हुए उन्होंने कहा—

'दानके साथ दानीका व्यक्तिगत स्पर्श भी आवश्यक हैं। बिना उस स्पर्शके दानकी राशि निर्जीव, अतः अपुष्टिकर है। दानके ग्राहकको किसी अन्यका नही, दान देनेवाले करका ही स्पष्ट स्नेह-सम्मान भी चाहिए, भले ही वह 'अन्य' उस दानका स्रोत और वह 'कर' केवल बीचका माध्यम ही हो। मेरे कोषकी अक्षयताका कारण मैं नहीं, मेरा मित्र कुबेर है; और कुबेरके साथ मेरी अभिन्नताकी श्रृङ्खलामें सम्मिलित होनेका योग्यतम अधिकारी मेरा यह अहंसम्पन्न प्रतिनिधि ही है।'

× × ×

मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि महाराज सलिलघोषके इस प्रतिनिधि की अध्यक्षतामे दानकी विशेष समृद्धिकारी परम्परा भू-लोकमे विकसित होकर कुछ काल पश्चात् लुप्तप्राय हो गयी, किन्तु आजकी अभावजनक व्यावसायिक अवस्थाओंको परिमार्जित करनेके लिए उस परम्पराके पुनर्जीवनके आशाप्रद लक्षण फिर प्रकट होने लगे हैं।

धूप-छाँव

स्वर्गसे पृथ्वी तककी तीन परिक्रमाएँ पूरी करते-करते मानव जातिने पाप और पुण्यकी चेतनाओंका अपने भीतर स्पष्ट रूपसे विकास कर लिया। मानव जातिकी कुछ मनुष्यात्माएँ निश्चित रूपसे पाप या अशुभ कर्मकी ओर तथा कुछ पुण्य या शुभ कर्मकी ओर प्रवृत्त दीखने लगीं।

चौथी परिक्रमाके आरम्भमे देवताओंने निश्चय किया कि पृथ्वीके प्रवेश-द्वारसे लेकर निसृति-द्वार तक—मनुष्यके पृथ्वीपर जन्मसे मृत्यु तककी पार्थिव जीवन-यात्राके लिए—दो सड़कें बनायी जायँ। एक उजाड़, अति उष्ण मरुस्थलीय भू-भागमें होकर निकाली जाय और दूसरी सुखद जलवायुवाले प्रकृति-श्री-सम्पन्न भू-भागमें होकर। पहली सड़क पापात्मा मनुष्योंकी जीवन-यात्राके लिए हो और दूसरी पुण्यात्मा मनुष्योंकी। अभिप्राय यह था कि पाप करने वालोंको उनके दुष्कर्मोका कटु और पुण्य करनेवालोंको उनके सुकर्मोका मधुर फल भी यथासम्भव जीवन-यात्राके साथ-साथ ही मिलता चले और इनपर उनका कोई अधिक लेन-देन आगेके लिए शेष न रहे।

देवताओंका यह निश्चय देवशिल्पी विश्वकर्माको सौंप दिया गया। दोनों सड़कोंके निर्माणका ठेका देव-कोषसे आवश्यक धन सहित उन्हें दे दिया गया।

चौथी परिक्रमाका—पृथ्वीपर मानव जनोंके चौथी बार आवागमनका—समय जब समीप आया तो अधिकारी देवता-गण विश्वकर्माके कार्यका निरीक्षण करने मर्त्यलोकमें पहुँचे।

उनके आश्चर्य और क्षोभकी सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि विश्वकर्माने पृथ्वीके प्रवेश-द्वारसे लेकर निसृति-द्वार तक केवल एक ही सड़क बनाई थी, सीधी और साधारणतया उष्ण प्रदेशोंमें होकर।

स्वर्गपुरीको लौट कर देव-सभाके अध्यक्षने भरे देव-दरबारमें विश्व-कर्मासे पूछा—'मानव जातिकी चौथी भू-परिक्रमाका समय अत्यन्त निकट आ गया है। क्या आप समझते हैं कि इतने स्वल्प कालमें आपका शेष कार्य पूरा हो जायगा ?' देवाध्यक्षका अभिप्राय दूसरी सड़कके निर्माणसे था। उनके स्वरमें क्षोभ और आरोपका तीव्र पुट था।'

'निस्सन्देह !' विश्वकर्माने उत्तर दिया, 'सड़कके दोनों किनारोंपर बोये हुए विटप-बीजोंके अंकुरित और पल्लवित होनेका ही काम मेरे ऊपर शेष रह गया है—वह पहले मानव दलके प्रस्थानके बहुत पहले ही पूर्ण हो जायगा।'

देवसभाके विधानके अनुसार विश्वकर्मापर तब तक कोई प्रकट आरोप नहीं लगाया जा सकता था जब तक कि उसके कार्यकी विफलता या अपूर्णताको व्यवहारमें बरत कर देख न लिया जाय। साधनकी पूर्णताके नहीं, साध्यकी पूर्तिके लिए ही कोई भी कार्यकर्त्ता उत्तरदायी माना जा सकता था।

यथासमय पुण्यात्मा और पापात्मा वर्गोंके दो मानव-दलोंको जन्म देकर पृथ्वीपर भेजा गया। एक ही सड़कपर चलकर दोनोंने अपनी जीवन-यात्राएँ पूरी कीं। सड़कके दोनों किनारोंपर छायादार वृक्ष उग आये थे।

भू-जीवनकी समाप्तिपर अपनी यात्रा पूरी कर दोनों वर्ग स्वर्गमें पहुँचे।

देवताओंकी सभामें दोनों वर्गोंके मनुष्योंने अपना-अपना अनुभव निवेदन किया। पुण्यात्मा वर्गके लोगोंने कहा—

'हमारी यह यात्रा बड़ी सुखद रही। वृक्षावलियोंसे गुठी सड़कपर सूर्यतापको रोकनेवाली तरुओंकी छाया और श्रम-स्वेदको सुखद-स्पर्शोंसे सुखानेवाली बयारोंने हमारे यात्रा-श्रमको अत्यंत रुचिकर बनाये रक्खा।'

पापात्मा वर्गके लोगोंने कहा—

'हमारी यह यात्रा अत्यंत क्लेशकर और दुस्सह रही। सड़कके वृक्षावलियोंसे गुठी होनेपर भी तरु-पल्लवोंसे छन-छन कर हमारे सिरपर आनेवाले सूर्यके प्रचण्ड आतपने और हमारे श्रमसे उत्पन्न पसीनेके सूखनेपर लपटों-सी झुलसाने वाली लूकी बयारोंने हमारो इस यात्राके श्रमको और भी दुस्साध्य और पीड़ाकर बना दिया।'

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि उन दोनों वर्गोके वक्तव्य सुननेपर देवताओंको दूसरी सड़क बनवानेकी आवश्यकता नहीं रह गयी और विश्वकर्माने इस ठेकेसे जो अधिक लाभ कमाया था उसे कुछ और पुरस्कार देकर देवताओंने द्विगुणित कर दिया। जीवनकी लगभग एक-सी ही परिस्थितियोंवाले पथपर चलते हुए पापी जन राहकी धूप-छाँवकी धूप-धूपको देखते हैं और पुण्यात्माजन उसकी छाँव-छाँवको—दोनोंमें अन्तर परिस्थितिका नहीं, परिस्थितिको ग्रहण करनेवाली प्रवृत्तिका ही विशेष होता है।

थके विजेता

किसी राजाके अश्वालयमे एक सहस्र घोड़े थे। इन हजार घोड़ोंमें-से सात ऐसे थे जिन्हें राजकीय घुड़सवारोंमेंसे कोई वशमें नहीं कर पाया था।

राजाने राज्यभरमे घोषणा करा दी कि उसे ऐसे सात समर्थ अश्वारोहियोंकी आवश्यकता है जो इन दुस्साध्य घोड़ोंको सवारीमें ले सकें।

सैकड़ों प्रार्थी राजदरबारमें उपस्थित हुए और उनमेसे सात सर्व-श्रेष्ठ अश्वारोही चुन लिये गये।

राजाने सौ कोसकी दूरीपर एक निर्दिष्ट स्थान बताकर उन सभीको आदेश दिया कि वे उस दिनसे सातवीं सन्ध्या तक अपने घोड़ों सहित उस स्थानपर पहुँच जायँ।

निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचनेके लिए सात दिनका समय दिया गया था, यद्यपि घोड़ोंकी सीधी दौड़के लिए वह केवल एक दिनका रास्ता था।

निश्चित समयपर सभी अश्वारोही अपने-अपने चुने हुए घोड़ोंकी पीठ पर जा पहुँचे।

सवारोंके शरीरका अपनी पीठपर स्पर्श पाते ही वे सातों घोड़े सामने की सड़क छोड़ अगल-बगलके मैदानों और खाई-खन्दकोंमें भाग निकले। सवार और लगामकी बात मानना उन बलिष्ठ, स्वच्छन्द घोड़ोंके स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था।

किन्तु वे सवार भी घोड़ोंके लिए आसान नहीं थे।

थोड़ी ही दूर भागनेके पश्चात् उन घोड़ोंकी उच्छृंखल गतिको अवरुद्ध होना पड़ा। प्रस्थान-स्थलीपर एकत्र सहस्रों दर्शकोंकी भीड़ने अपनी दृष्टि-सीमाके भीतर ही देखा, उन घोडोंकी चाल रुक गई थी और वे सवारों की लगामके वशीभूत, सीमित क्षेत्रोंके भीतर नाच रहे थे।

उन सातमेंसे छह घोड़े दर्शकोंकी दृष्टिके भीतर रुक गये थे। उनमेसे केवल एकका पता नहीं था, उसे अपने सवारको लेकर सरपट एक ओर को ओझल होते ही लोगोंने देखा था।

इन छहों घोड़ों और सवारोंके बीचका संघर्ष साधारण नहीं था, किन्तु अन्ततोगत्वा सवारोंका लगामी लोहा घोड़ोंको मानना ही पड़ा। छठी शाम तक वे छहों सवार आगे-पीछे निर्दिष्ट स्थलपर पहुँच गये। उनमेंसे केवल एकका पहले दिनसे ही कोई पता नहीं था।

राजा अपने कुछ दरबारियों सहित पहलेसे ही वहाँ पहुँच गया था।

राजाकी आज्ञासे उन छहों सवारोंका यथेष्ट सत्कार किया गया और उस रात उनके विश्राम तथा थकान उतारनेवाले उपचारोंकी विशेष व्यवस्था की गई।

पिछले छह दिनोंके दुस्साध्य अश्वारोहण-श्रम तथा बीचकी पाँच रातों के आंशिक विश्रामकी अत्यल्पताने उनके शरीरको थकानसे बुरी तरह चूर कर दिया था। पिछली रातके विश्राममें उनकी थकान ही और उभरी थी, जैसा कि अतिश्रमके पश्चात् प्रारम्भिक विश्राममें होता है।

राजाकी आज्ञासे वे छहों सवार सुबह उसके सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने आश्चर्यके साथ देखा, भटका हुआ वह सातवाँ सवार भी उनके साथ अपने घोड़े-सहित उपस्थित था।

वह आधी रात बीते किसी समय वहाँ आ पहुँचा था और राज शिविर-के बाहर ही कुछ देर विश्राम कर चुका था।

राजाने सभी सवारोंपर दृष्टि डाली और तब इस अन्तिमको लक्ष्य कर कहा—

'तुम निश्चित समयसे बहुत पीछे, फिर भी आवश्यक कार्यके लिए ठीक समयपर यहाँ आ गये हो। मेरे चुने हुए सातों अश्वारोहियोंमें तुम्हीं एक ऐसे हो जो मेरे प्रमुख, इस समयके आवश्यक कार्यपर आगे जानेके

लिए यथेष्ट स्वस्थ हो और अपने वाहक अश्वको अपना सहयोगी मित्र बना सके हो।'

इतना कहकर राजाने उसे अगली मंज़िलके किसी दुर्गम प्रदेशके राजाके पास ले जानेके लिए अपना लिखित सन्देश-पत्र सौंप दिया और शेष छह सवारोंको कुछ धन देकर छुट्टी दे दी। आवश्यक समयके भीतर राजकीय सन्देशको अभीष्ट स्थानपर पहुँचानेका सामर्थ्य उनमें नहीं रह गया था।

इस अन्तिम सवारने अपने घोड़ेको पहले तीन दिन तक स्वच्छन्द रूपसे स्वेच्छित दिशाओंमें दौड़ने-विचरनेकी पूरी छूट दे दी थी। तीन दिन तक वह घोड़ेकी दौड़के समय उसका केवल पीठका साथी तथा विश्रामके समय उसका सहायक और सेवक रहा था। चौथे दिन वह अपने घोड़ेके विश्रामका संगी और विश्वासपात्र नायक बन सका था। पाँचवें दिन और रातकी दौड़में विपरीत दिशाओंकी भटकी हुई दूरियाँ पार करके वह अपने नगरको लौट आया था, और छठा दिन विश्राम एवं सुख-सेवनमें बिताकर छठी रातकी सुहावनी चाँदनीमें निर्दिष्ट स्थानपर जा पहुँचा था।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि संसारमें इस समय अश्वारोहियोंकी संख्या ढाई अरबसे कम नहीं है, किन्तु वे अपने घोड़ोंको साधने और समयके भीतर किसी प्रारम्भिक मंज़िलतक पहुँचानेमें इतने थक जाते हैं कि दूसरी अभीष्ट मंज़िलकी ओर बढ़नेका दम उनके शरीरमें नहीं रह जाता। साथ ही सबसे बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि उन्हें अपने अश्वारोही होनेका प्रायः पता ही नहीं होता और वे स्वयंको पदचारी पयादा ही समझे रहते हैं। मेरे कथागुरुके इस अन्तिम संकेतका अभिप्राय क्या आपके सामने पूर्णतया स्पष्ट नहीं है?

स्थूल और सूक्ष्म

दक्षिण भारतके समुद्र-तटवर्ती तत्कालीन अम्बुनाड नामक प्रदेशमें किसी समय एक अति प्राचीन मानव जातिके वंशज रहते थे। इन लोगोंकी कोई नियमित राजकीय व्यवस्था नही थी। ये अलग-अलग दलोंमे छोटे-छोटे ग्राम-समूहोंमें रहते थे और इनके दल-नायक ही न्यूनाधिक रूपमे इनके शासक थे। ये लोग खेती करते थे। धरतीके धान और समुद्रकी मछलियाँ ही इनका मुख्य आहार था। पड़ोसके पार्वत्य वनोंसे कुछ पशुओंका आखेट भी ये कर लेते थे। दलोंके बीच धरती और जल भागोंके लिए युद्ध भी प्रायः होते रहते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि इनके खेतोंमें पानी न बरसनेके कारण धान तनिक भी नही उपजा और समुद्रकी मछलियाँ भी किसी दैवी प्रेरणावश तटसे इतनी दूर चली गयीं कि वहाँ-तक इनकी डोंगियाँ नहीं पहुँच सकती थीं।

आहारके अभावसे जीवनका संकट इनके सामने आ खड़ा हुआ।

ऐसे संकट-कालमें सम्पूर्ण जातिके समस्त दलोंके लोग एकत्र हुए और अपने अग्रचेता गुरुजनोंकी सलाहसे पड़ोसके समृद्ध द्रविड़ राज्यके राजाके पास उन्होंने संदेशा भेजा कि वे उनके राज्यमें सम्मिलित होकर उनकी प्रजा बननेके लिए तैयार हैं, यदि द्रविड़-राज उस समय उनकी जीवन-रक्षाकी तथा भविष्यमें सुखपूर्वक जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था कर सकें।

द्रविड़-राजकी दृष्टि बहुत दिनोंसे अम्बुनाडपर थी और वे इसे अपने राज्यमें सम्मिलित करना चाहते थे। किन्तु इस जातिकी अराजकता और दुर्दम्य स्वच्छन्दताकी प्रवृत्तिके कारण अबतक उन्होंने इस दिशामें कोई पग नहीं उठाया था।

अब अम्बुनाड-वासियोंकी ओरसे ही ऐसा प्रस्ताव आनेपर द्रविड़राजको बड़ी प्रसन्नता हुई। अभ्यागत प्रतिनिधियोंको उन्होंने सत्कारपूर्वक ठहराया और निश्चय किया कि धानसे भरी गाड़ियोंके साथ अपने छोटे पुत्रको भेजकर उसे ही वहाँका शासक बनाकर अम्बुनाडको अपने राज्यमें सम्मिलित कर लेंगे।

किन्तु अगले ही दिन द्रविड़राजको समाचार मिला कि उनके ही एक उपराज्यके शासक, उनके जामातृने अपने राज्यसे धानसे लदी गाड़ियाँ अम्बुनाडकी ओर प्रचालित कर दी थीं।

द्रविड़राजके जामातृको किसी प्रकार अम्बुनाडके उस द्रविड़राजके लिए भेजे हुए प्रस्तावकी सूचना मिल गयी थी और उसने उस प्रदेशको अपने राज्यके अन्तर्गत अधिकृत करनेके लिए ही यह कार्यवाही की थी।

द्रविड़राज इस समाचारसे बड़ी द्विविधामें पड़ गये। यह पूर्णतया संभव था कि उस उपराज्यसे धान्यकी सहायता और आश्वासन पहले पाकर अम्बुनाड-वासी उसीकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। इस प्रसंगमें अपने जामातृका विरोध न करना अपने राज्यकी न्यायोचित लाभ-क्षतिका विषय था।

द्रविड़राजने मंत्रियोंसे परामर्श किया। मंत्रि-जनोंका बहुमत इस पक्षमें था कि सेनाका एक दल भेजकर मार्गमें ही उस धान्यको रुकवा दिया जाय, उपराजको उसकी इस विद्रोह-परक कार्यवाहीके लिए दंडित किया जाय और अपने राज्यसे धान्यकी गाड़ियाँ शीघ्र ही अम्बुनाडके लिए भेजी जाँय।

किन्तु एक नये तरुण मंत्रीके अनोखे सुझावपर यह सब कुछ नहीं किया गया।

राजकुमारको अम्बुनाडसे आये प्रतिनिधियोंके साथ उस देशकी ओर द्रुतचल रथोंपर सवारकर भेज दिया गया।

राजकुमारका यह रथीदल स्वभावतया उस छकड़ सेनासे पहले अम्बुनाडमें पहुँच गया।

मंत्रीके निर्देशानुसार राजकुमारने अम्बुनाड-निवासियोंको सूचना दी कि उनका प्रस्ताव द्रविड़राजने स्वीकार कर लिया है और प्राथमिक निर्वाहके लिए धानसे भरे छकड़े पीछे-पीछे आ रहे हैं।

अम्बुनाड-वासियोंने इस प्राण-रक्षक संदेशका अत्यन्त उल्लसित भावसे स्वागत किया। धान्यसे पहले धान्यके संदेशने उनके समीप पहुँचकर उनके अर्द्धमृतक शरीरोंमें जीवन फूँक दिया।

कुछ समय पश्चात् धानसे भरी गाड़ियोंकी धूल अम्बुनाडके पूर्व सीमान्त प्रदेशके क्षितिजपर दिखाई दे रही थी और इधर वहाँके निवासी द्रविड़ राजकुमारको अपने नवनिर्मित राज्यासनपर प्रतिष्ठित कर रहे थे!

× × ×

और मेरे कथागुरुका कहना है कि सूक्ष्म ही नहीं भौतिक-जगत्के भी संग्रहीत आंकड़ोंके अनुसार स्थूलरूप धान्यकी तुलनामें सूक्ष्मरूप धान्यकी आशा ही मानव मात्रके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण एवम् जीवनप्रद है और स्थूलपर सूक्ष्मकी व्यापक विजय सृष्टिका एक पूर्ण समर्थ नियम है।

मुक्तिकी ओर

विधाताने इस पृथ्वी-लोककी रचना जब पूरी कर ली तो स्वर्ग-लोकके कुछ निवासियोंके मनमें यहाँ बसनेकी इच्छा हुई। यह पृथ्वी-लोक अपनी विशिष्ट स्थूलताके कारण स्वभावतया दूसरे लोकोंसे कुछ अधिक सुन्दर भी बन गया था। स्वर्गके जो निवासी यहाँ आनेके लिए तैयार हुए उनकी आगे चलकर एक अलग जाति बन गई और वह मानव-जातिके नामसे पुकारी जाने लगी।

पृथ्वीपर आनेके लिए उन्हे अपने नव-निर्मित शरीरों पर लाखों मनका स्थायी बोझ लेना पड़ा। बिना इस बोझके उनके शरीरोंका पृथ्वीपर टिकना कठिन था[1]। स्वर्गके आकर्षणको कम करनेके लिए इतने बोझकी आवश्यकता अनिवार्य थी।

इस बोझका नाम आगे चलकर दुःख रख दिया गया। यह एक पारभौतिक और बादमें भौतिक रूपमे भी स्वीकृत तथ्य हो गया कि इस 'दुःख' के बिना कोई संसारमें नहीं रह सकता।

कुछ युग बीतनेपर इस दुःखने मनुष्यके जीवनको अत्यंत एकरस और नीरस बना दिया। इस दुःखके कारण मानव-जन भू-लोककी सुन्दरताओंको देखने-बरतनेमें असमर्थ होने लगे।

मनुष्योंने विधातासे प्रार्थना की कि वह इस बोझको उनके सिरसे हटा ले या कुछ कम कर दे।

किन्तु विधाता ऐसा नहीं कर सकता था। पृथ्वी-निवासियोंका एक रत्ती भी बोझ घटानेसे ब्रह्मांडके ग्रह-नक्षत्रोंका सन्तुलन बिगड़ कर प्रलय हो जानेका भय था।

---

[1] **आजका भौतिक विज्ञान भी कहता है कि मनुष्यके शरीरपर वातावरणका दबाव प्रति इञ्च १५ पौंडके हिसाबसे बराबर रहता है।**

मनुष्योंकी व्याकुलता और अशान्ति बढ़ती गई। वे अब स्वयं इस दुःख से बचनेका उपाय खोजने लगे।

अन्तमें एक मनुष्यने इसका उपाय खोज ही लिया। उसने अपने एक साथीको इस बातके लिए तैयार कर लिया कि वह एक दिनके लिए अपना भी बोझ उसे दे दे।

उस दिनकी यात्रा उस मनुष्यने दुगने बोझके साथ पूरी की, लेकिन उसके साथीने पहली बार अपने भारसे मुक्त होकर पूर्ण निर्भारिता और असाधारण सुखका अनुभव किया। दिनभरकी यात्रामें उसका साथी बराबर उसका हाथ अपने हाथमें लिये रहा, अन्यथा उस भारमुक्त व्यक्तिका पृथ्वीपर टिकना कठिन था।

अगले दिनको यात्रामे दूसरे मित्रने पहलेका भी बोझ ढोया और उसे भार-मुक्तिका सुख चखनेका अवसर दिया। इस प्रकार 'दुःख' की दुनियामें आनन्द नामके विशुद्ध स्वर्गिक सुखकी अनुभूति इन दोनों मित्रोंने मिलकर कर ली।

आगे चलकर इन दोनों मानव-बन्धुओंकी देख-रेखमें ऐसी व्यवस्था हुई कि दूसरोंका बोझ उठानेवाला एक वर्ग ही मानव-जातिमें बन गया।

धीरे-धीरे यह भार-वाहक वर्ग अपने श्रमाभ्यास द्वारा इतना समर्थ हो गया कि इनमेंमें एक-एक व्यक्ति सैकड़ों-हज़ारों व्यक्तियोंका भार अपने ऊपर उठाकर उन्हें भारहीनताके सुखको अनुभूतिका अवसर देने लगा। कहते हैं कि इस प्रक्रिया द्वारा उन समर्थ मनुष्योंमे बिना उस भारके भी पृथ्वीपर स्वेच्छानुसार टिके रहनेकी एक नई शक्ति जाग उठी है, और इस क्रमसे एक दिन वह भी आ सकता है जब मानव-जातिके सभी व्यक्ति बिना किसी भार (दुःख) के इस पृथ्वीपर रहने योग्य हो जायँगे।

कुछ खोज-समर्थ इतिहासकारोंका अनुमान है कि मानव-जातिके इन दो सर्वप्रथम मनुष्योंके नाम गौतम बुद्ध और मैत्रेय है।

खोजकी माया

मेरी असाधारण, अदम्य साधनाओंसे विवश होकर ईश्वरको अन्तमें अपना एक दूत मेरे पास भेजना ही पड़ा।

ईश्वरका निमन्त्रण लिये वह मेरे घर आया और मुझे लोक-लोकान्तरों की राह उसके निजी महलोंमे ले गया।

जबरूत, मलकूत, लाहूत, हाहूत, हूतलहूत आदि राहके सभी लोक-लोकान्तरोंके नाम मैंने अपनी डायरीमें लिख लिये और उनके अनेक स्थलोंके फोटो भी खींच लिये। लोक-लोकान्तरोंके ये नाम मेरे लिए नये केवल इसलिए थे कि वह देवदूत अपने पिछले मानव-जन्मके दिनोंमें किसी ईरानी सूफ़ी सन्तका शिष्य था और लोक-लोकान्तरोंके नाम उसी देशकी भाषामें जानता था।

उस दिन ईश्वरके महलोंसे उसका यथेष्ट स्नेह-सत्कार पाकर मैं अपने घर लौटा।

अगले दिन मैं अकेले ही लोक-लोकान्तरोंकी राह उसके महलोंकी ओर चल पड़ा। लोकोंके नाम, राहकी दिशाओंके संकेतों सहित मेरी डायरीमें, और मोड़ोंके विविध स्थलोंके चित्र मेरे अलबममे मौजूद थे।

लेकिन कह नहीं सकता, कहाँ-कैसी भूल हुई मै ईश्वरके महलों तक नहीं पहुँच पाया। निराश हो, मुझे अपने घर लौटना पड़ा।

पहले दिनके अनुसार ईश्वरके महलों तककी यात्रा केवल आधे दिनकी थी। अब मैं प्रतिदिन सबेरे घरसे निकलता, दोपहर बीते तक ईश्वरके महलोंकी राह खोजता और निराश हो, तीसरे पहर अपने घरकी ओर लौट पड़ता। निराशा और थकान लिये मेरी रात नीदमें कट जाती।

होते-होते इसी क्रममें मेरे जीवनकी अन्तिम साँझ भी आ गई। उस रात मैंने अपना घर सदैवके लिए छोड़ दिया।

घरसे बाहर निकल कर मैं निरुद्देश्य उसके द्वारपर आ खड़ा हुआ। ईश्वरके प्रति मेरा प्रेम अवश्य था, किन्तु उसके महलोंकी ओर बढ़नेका कोई उत्साह मेरे मनमे शेष न रह गया था।

अचानक अपने कन्धेपर एक स्पर्शका अनुभव पा कर मैंने मुड़कर देखा, ईश्वर ही साक्षात् मेरे सामने उपस्थित था।

मेरे उलाहनेका उत्तर देते हुए उसने कहा—

'नहीं! पहली भेंटके दिनसे बराबर नहीं, केवल उतने ही समयके लिए मुझे तुमसे अलग रहना पड़ता था जितने समय तुम मेरे महलोंकी खोजमें लगे रहते थे।'

और तब ध्यान देनेपर मैंने देखा कि सचमुच एक बार मिलनेके पश्चात् राह और दूरीका अस्तित्व केवल एक भ्रम ही था।

गिद्ध और मक्खी

किसी वनमें गिद्धोंका एक बड़ा परिवार रहता था।

हर तीसरे वर्ष ये अपने समूहमे-से किसी एकको अपना सरदार चुन लेते थे और अपने नेतृत्व कालमें वही उनकी भोज-यात्राओंका निर्देशक और अगुआ होता था। नये भोजनका पहला ग्रास लेनेका अधिकार उसीका होता था और उसीके आदेशानुसार गिद्धोंको अलग-अलग टोलियोंमे बँटकर अपनी बारीपर भोज्य-शवका आहार करना और समयोपरान्त वहाँसे हटकर दूसरी टोलीको भोजनका अवसर देना पड़ता था।

एक बार उस वनमे नये गिद्धराजके राज्याभिषेकका समारोह हो रहा था। सभी गिद्ध एक बड़े टीलेपर अपने नये राजाको घेरकर वृत्ताकारमें बैठे हुए थे। उनमेसे कुछ प्रमुखजन उसके प्रति बारी-बारी प्रशस्ति और बधाईके शब्द प्रस्तुत कर रहे थे।

एक मक्खी भी वहाँ उनके बीच उपस्थित थी। अवसर पाकर वह सरदारके समीप आ बैठी और गिद्ध-सभाको सम्बोधित कर कहने लगी—

'जिसे आपलोगोंने अपना सरदार निर्वाचित किया है वह बहुत दिनोंसे मेरा परम मित्र है। मुझे प्रसन्नता है कि आपने अपने अत्यन्त बुद्धिमान् और योग्यतम व्यक्तिको ही अपना नायक निर्वाचित किया है। इस निर्वाचनके लिए मैं अपने मित्रको बधाई और आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ और आपको विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मेरे मित्रके नाते आप सभीको मेरी बड़ीसे-बड़ी सेवाएँ सदैव प्राप्त रहेंगी।'

मक्खीने अपने संक्षिप्त भाषणमें बताया कि कुछ वर्ष पहले एक समय मनुष्योंके एक गाँवमें बासे भातके ढेरपर बैठी वह अपना भोजन कर रही थी। वहींपर यह गिद्ध आ पहुँचा। गिद्धने उसे अपनी चोंचसे कोई हानि

नहीं पहुँचाई और उसके लिए यथेष्ट भोजन छोड़कर आस-पासका शेष भाग उसने प्रेम-पूर्वक उसके साथ ही खाया। तभीसे वह इस गिद्धको अपना मित्र मानती आ रही है।

सभी गिद्धोंने आश्चर्य-चकित दृष्टिसे इस मक्खीको देखा और इसकी बात सुनी। स्वयं गिद्ध सरदारको भी इस मक्खीके परिचय या मित्रताका कोई ज्ञान नहीं था। मक्खीकी बात छोटे मुँह बहुत बड़ी बात थी; ऐसी बराबरीका दावा गिद्धोंके लिए अत्यन्त निरादरपूर्ण और अपमान-जनक था।

एक गिद्धने प्रस्ताव किया कि उसे अनुमति दी जाय कि वह अपनी चोंचके हल्के प्रहारसे इस मक्खीको समाप्त कर इसे इसके अपमान-जनक कथनका उचित दण्ड दे दे।

कई गिद्धोंने उसके प्रस्तावका समर्थन किया। किन्तु नये गिद्ध सरदार ने कहा—

'इस मक्खीने यदि अपमान किया है तो सबसे सीधा मेरा ही किया है। मैं चाहता हूँ कि आप इसे अभी ऐसा दण्ड न दें, और इसकी कथित बड़ी सेवाओंके प्रदर्शनका कुछ अवसर देनेके बाद ही इस दिशामें कुछ निश्चय करें।'

अगली सुबह ही उन्हें भोजन-यात्राके लिए सौ कोस दूर एक दूसरे वन-खंडकी ओर प्रस्थान करना था। उनके अग्रचर दूत एक बड़े हाथीके शवका समाचार वहाँसे लाये थे।

'अगली दोपहरको हम लोग सौ कोस दूर एक दूसरे वनमें भोज करेंगे। आशा है तुम वहाँ हमें अपनी बड़ी सेवाएँ दे सकोगी।' उसी पहले गिद्धने अपने क्रोधको भीतर-ही-भीतर दबाकर व्यंग्य किया।

'निस्सन्देह, तुम मेरे छोटे पंखोंको देखकर समझते हो कि मैं कल सुबहसे दोपहर तक सौ कोस दूर भी नहीं जा सकती! लेकिन पंखोंसे

बुद्धि बड़ी होती है और वह मेरे पास तुमसे कुछ अधिक है।' मक्खीने उत्तर दिया।

अगली सुबह गिद्धोंका वह परिवार उस वनकी ओर उड़ चला। एक पहाड़ी नदीके किनारे वह हाथी मरा पड़ा था। उसके पास ही इधर-उधरकी चौड़ी चट्टानोंपर सभी गिद्ध बैठ गये।

'मेरे मित्रो!' गिद्धोंने अचानक सुनकर हाथीकी ओर दृष्टि फेरी तो देखा, उसकी सूँड़के ऊपर बैठी हुई वही मक्खी कह रही थी—'मेरे मित्रो, आपलोगोंके यहाँ व्यवस्थित होनेसे कुछ ही पहले मैं यहाँ पहुँची हूँ। यह तीव्र गति मैंने मैत्री-सहयोगकी साधना द्वारा ही पाई है। इस समयकी मेरी सबसे बड़ी सेवा यही है कि आप मेरा आदेश मानकर इस हाथीको न खायें और आस-पास किसी दूसरे भोजनकी खोज कर लें। यह हाथी किसी अत्यन्त तीव्र विषको खाकर मरा है और इसका मांस खानेसे आप सबके प्राण संकटमें पड़ जायेंगे। स्वस्थ और विषाक्त मांसकी जितनी परख मुझे है आपको नहीं हो सकती; इसलिए आपको मेरा यह परामर्श मानना ही चाहिए।'

गिद्धोंको मक्खीके इस उपवास-कारक परामर्शसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसके प्रथम विरोधी गिद्धने ही कहा—

'इस मक्खीके हौसले बहुत बढ़ते जा रहे हैं। कल इसने हमारा इतना बड़ा अपमान किया और आज अपनी कुटिलतासे हमें भोजनसे भी वंचित करना चाहती है।'

'मेरी कुटिलता या सरलताका परीक्षण कठिन नहीं है। तुम्हें विश्वास न हो तो सरदारकी अनुमतिसे तुम इस मांसका स्वाद लेकर स्वयं देख सकते हो।' मक्खीने उससे कहा।

सरदार और दूसरे गिद्धोंकी ओरसे किसी विरोधका संकेत न पाकर उस गिद्धने हाथीकी सूँड़पर अपनी चोंच मारी और थोड़ी ही देरमें चक्कर खाकर धरतीपर गिर पड़ा।

सचमुच उस हाथीको उसके मालिकके किसी शत्रुने तीव्रतम विष देकर ही मारा था—

× × ×

गिद्धोंके मनमें उठे अनेक प्रश्नोंका समाधान करते हुए पड़ोसके पेड़की डालपर बैठे एक अन्तर्यामी बुद्धिमान् कौएकी वाणी सुनाई दी—

'सहयोग और सेवा छोटेसे-छोटे जीवकी भी सादर, सहर्ष और कृतज्ञता-पूर्वक लेनेके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। ऐसा सहयोग प्रस्तुत करनेवाली नगण्य मक्खी भी, जो दिन भरमें सौ बीघेसे अधिक दूर नहीं उड़ सकती, किसी गिद्धकी पूँछपर उसके अनजाने ही सवार होकर आधे दिनमें सौ कोस जा सकती है और वहाँ उसके दल-बल सहित प्राणोंकी रक्षा कर सकती है।'

निन्नानबे और सौ

और यथासमय ब्रह्माजीने सुख और दुःखके सौ देवताओंका एक दल मनुष्योंकी पृथ्वीपर भेज दिया। उनके सबसे बड़े राज-नगरके महामन्दिरमें वह दल अवतरित हुआ।

इन सुख और दुःखके देवताओंकी सौ-सौ पहचानें उन्होंने पहलेसे ही मनुष्योंके शास्त्रों और धर्मग्रन्थोंमें लिखा रक्खी थीं।

मानव-शिशुके रूपमें जन्म लेकर आनेवाले इन देवताओंमें सुखदेवोंकी सौमे-से पहली, सबसे मोटी पहचान यह थी कि वे रंगके स्वर्णवर्णी होंगे, और सबसे अन्तिम तथा झीनी यह कि उनके दाहिने कानके पीछे एक छोटा, कठिनाईसे दीखनेवाला, उभरा हुआ नीला तिल होगा। इसी प्रकार दुःखदेवोंकी सबसे पहली, मोटी पहचान यह लिखी थी कि वे रंगके ताम्रवर्णी होंगे और सबसे झीनी यह कि उनके बायें कानके पीछे एक उतना ही छोटा उभरा हुआ काला तिल होगा।

मनुष्य लोग सुखके देवताओंको ही अपनी धरतीपर रखना और दुःखदेवोंको वापस विदा कर देना चाहते थे। शास्त्रोंमें इसके लिए विधान दिया हुआ था—पीले फूलोंकी माला जिन देवताओंको पहना दी जायगी वे पृथ्वीपर टिक जायेंगे और जिन्हें काले फूलोंकी पहनाई जायेगी वे तुरन्त यहाँसे लौट जायेंगे।

मनुष्योंने शास्त्रोक्त चिह्नोंके अनुसार उन्हें सुखद और दुःखदके वर्गोंमें अलग-अलग कर लिया।

सुनहले और तँबहले दोनों वर्गके शिशुओंमें सुखदेवोंके और तँबहले शिशुओंमें दुःखदेवोंके अधिकांश लक्षण पहली ही दृष्टिमें देखे जा सकते थे।

सुखद और दुःखद वर्गोंके शिशु-रूप देवदूतोंको महामन्दिरके उत्तर और दक्षिण पार्श्वोंमें अलग-अलग पालनोंपर लिटा दिया गया था और

दूसरे वर्गके शिशुओंको विदा करनेके लिए काले फूलोंकी मालाएँ पहनानेका आयोजन हो ही रहा था कि मन्दिरके एक तरुण पुरोहितने वहाँ प्रवेश किया। वह कार्य-वश कहीं वाहर ही अबतक रुक गया था।

ग्राह्य वर्गके शिशुओंका निरीक्षण करनेके बाद उसने ध्यान-पूर्वक त्याज्य वर्गके शिशुओंका भी निरीक्षण किया, और तब उसी दूसरे वर्गके एक शिशुको गोदमे उठाते हुए उसने कहा—

'इस शिशुमें दुःखदेवके केवल निन्नानबे लक्षण है, पूरे सौ नहीं, इसलिए यह दुःखदेव कदापि नहीं हो सकता। आप लोग इस ऊनशत लक्षणी (निन्नानबे लक्षणों वाले) के साथ शतलक्षणी (सौ लक्षणों वाले) का-सा व्यवहार क्यों करने जा रहे हैं ?'

महामन्दिरके बुद्धिमान् पुरोहित-वर्गने अपने इस तरुण सदस्यकी बात का बड़ा उपहास किया, फिर विरोध और उसके निरन्तर हठकी भर्त्सना भी की। किन्तु राजाके निर्णयसे, उस तरुण पुरोहितके प्राणोंके मूल्यपर, उस शिशुको रोक लिया गया।

उन्चास ताम्रवर्णी शिशुओंको काले फूलोंकी मालाएँ पहना दी गई और उनका स्पर्श पाते ही वे अन्तर्धान हो गये। स्वर्णवर्णी शिशु पीले फूलोंकी मालाओंमें मुसकराते वहाँ रह गये।

ताम्रवर्णी उन्चासों दुःखदूतोंके अन्तर्धान होते ही इस पचासवेंका वर्ण एकदम स्वर्णिममे बदलकर जगमगा उठा और उस ताम्रवर्णी माया-चर्मके लुप्त होते ही सुखदूतके सम्पूर्ण सौवों लक्षण उसके शरीरपर झलकने लगे।

× × ×

कतिपय अप्रकाशित शास्त्रों-पुराणोंके टीकाकारोंके अनुसार संसारकी सबसे अधिक रहस्यपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण कथा यही है। मेरे कथागुरुका कहना है कि संसारकी प्रगतिके लिए उसमें उन्चास दुःखोंके समक्ष इक्यावन सुखोंका आविर्भाव एक अत्यन्त सार्थक तथ्य है। सुखोंकी सुरक्षाके लिए उनके साथ-साथ दुःखोंका भी अवतरण, सर्वोच्च सुखका दुःखोंके झीने

परिधानमें आगमन और सबसे छोटे पुरोहित-द्वारा उसकी खोज—में कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियाँ हैं और इन्हें सुलझाना कठिन नहीं है। इसके आगे लाल रोशनाईसे लिखी मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि निन्नानबे और सौका अन्तर यद्यपि मानव-जातिकी सर्वश्रेष्ठ विद्या—गणित विद्याने शिक्षित मानव-समाजके सामने प्रकट कर दिया है, किन्तु व्यावहारिक रूपमें वे अभी सौ और निन्नानबेका तो क्या सौ और इक्यावनका भी अन्तर बरतना नहीं जानते। जिस दिन वे इसे पूर्णतया बरतना सीख जायेंगे उस दिन उनके सीखनेके लिए पृथ्वीपर कुछ भी शेष न रह जायगा।

तो क्या सचमुच निन्नानबे और सौका अन्तर बरतना हम-आप अभी नहीं जानते ?

तुरत उपचार

किसी समय एक देशमें वर्षाकी कमी और व्यापारिक ह्रासके कारणोंसे बड़ी दरिद्रता आ गई और देश-वासियोंके भूखों मरनेकी नौबत आ पहुँची।

देशके राजाने राज्यभरमें घोषणा कर दी कि जो व्यक्ति इस परिस्थितिसे मुक्ति दिलानेके लिए सबसे अच्छी योजना प्रस्तुत करेगा उसे ही राज्यका प्रधान मंत्री बनाकर उसकी योजनाको कार्यान्वित करनेका पूरा अवसर दिया जायगा।

अनेक विद्वानों और अर्थ-कृषि-विशारदोंने अपनी-अपनी योजनाएँ प्रस्तुत कीं। योजनाएँ स्वभावतया लम्बी-चौड़ी और कम या अधिक देर-साध्य थीं और उनके कार्यान्वित करनेमें बहुत धैर्यकी आवश्यकता थी। किन्तु उनमें एक योजना ऐसी भी थी जिसमे पहले दिनसे ही प्रस्तुत विकट समस्याके हलका आश्वासन था; और विशेषता यह थी कि उस योजनामें आश्वासनके अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं थी।

राजाने इसी योजनाको स्वीकार कर लिया और उसके प्रस्तुत-कर्ताको प्रधानमन्त्री बनाकर उसके अधिकार सौंप दिये।

इस नये मन्त्रीने राजकीय अन्नके सुरक्षित गोदामोंमें-से निकलवाकर अन्नके बोरे रातोरात राज्यके प्रत्येक नगर और ग्राममें पहुंचवा दिये और आदेश दिया कि प्रतिदिन प्रत्येक नगर और ग्राममें केवल प्रातःसे मध्याह्न कालतक ही खेतों और कारखानोंमें काम होगा, दोपहरमें राजकीय भोजनशालासे सबको यथेष्ट भोजन मिलेगा और सायंसे शयन-कालतकके लिए विशेष मेलों और विविध प्रकारके सामूहिक आमोद-प्रमोदोंका आयोजन रहेगा। इस व्यवस्थाके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिके लिए उसकी रुचि और शक्तिके अनुकूल नियमित श्रम-दान अनिवार्य था।

इस प्रकार सारे राज्यमें मेलों और नगर-भोजोंका दौर चल पड़ा। जनता अपने प्रस्तुत अभावके संकटको भूल गई और उसे विश्वास होने लगा कि किसी दैवी समृद्धिने आकर उनकी दरिद्रताको दूर कर दिया है।

किन्तु सात ही दिनके भीतर राजकीय अन्न-भण्डार तीन चौथाईसे अधिक खाली हो गया। राजाको इसकी सूचना मिली। उसने तुरन्त इस मन्त्रीको अपदस्थ करके कारावासमें डाल दिया और अगले दिन फाँसीके तख्तेपर लटका दिया। इतनी बड़ी राष्ट्र-घाती मूर्खता या उच्छृङ्खलताका इससे कम और क्या दण्ड दिया जा सकता था ! यह दण्ड जनताकी दृष्टिमें नहीं आने दिया गया।

किन्तु राजकीय भोजन-शालाएँ अब बन्द नहीं की जा सकती थीं। उन्हे बन्द करनेका अर्थ था, देशमे भयङ्कर अराजकता और लूटमार। राजाने देशके धनिकों और अन्न-व्यवसायियोंके पास रातोरात अपने गुप्तचर भेजकर उन्हे इस भयंकर परिस्थितिकी चेतावनी दी और कहा कि यदि वे अपना सम्पूर्ण अन्न तुरन्त ही राजकीय गोदामोंमें न भेज देंगे तो दो-तीन दिनके भीतर ही जनता उनके अन्न-भंडारोंके साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति और प्राणोंतकको लूट लेगी।

परिस्थितिकी उग्रता स्पष्ट थी। अधिकांश अन्न-संग्राहकोंने अपने संग्रहका अधिकांश भाग राज-भंडारमें दे दिया। राजकीय भोजन-शालाएँ यथावत् चलती रहीं और उनके साथ-साथ मेलों और उत्सवोंके दौर भी। राज-भंडारमें इस नये आयात अन्नसे देशभरका तीन महीनेका काम और चल गया। जब राज-भंडारमें दस दिनके लिए अन्न शेष रह गया तब नई फसल कट कर आनेमें केवल बीस दिनकी देर रह गई थी।

यथोचित विज्ञप्तियों द्वारा राजाने यह स्थिति समस्त जनताके सम्मुख प्रकट कर दी। अबकी बार फसल बहुत अच्छी हुई थी। लोगोंने परिश्रम, उत्साह और निश्चिन्ततासे काम किया था, भूखका आतंक उनके हृदयोंसे निकल गया था। बीस दिन तक आधा भोजन लेकर ही काम चलानेकी

राज-व्यवस्थाको जनताने सहर्ष स्वीकार किया। कुछ अन्न-धनिकोंने अपना छिपाया हुआ अन्न भी राज-भंडारमें भेज दिया। भोजनकी कमी और भी घट गई।

नये अन्न दिवसका उत्सव राज्यमे विशेष समारोहसे मनाया गया। उसी दिन राज-दरबारमें मृत्युदण्ड प्राप्त प्रधान मन्त्रीके एक पुराने भृत्यने एक परचा राजाके सम्मुख प्रस्तुत किया। उसमे प्रधान मन्त्रीने—जो कृषि और अर्थके साथ-साथ मनोविज्ञानका भी एक प्रकाण्ड किन्तु अविज्ञापित अन्वेषक था—अन्न-व्यवस्था-सम्बन्धी गणना इस प्रकार अङ्कित की थी—

१२ कोटि जनताके लिए आगामी अन्न दिवस तकके लिए आवश्यक— १२० सहस्र तुला	राज भंडारमें संग्रहीत— ९ सहस्र तुला
आतंक जनित अतिरिक्त क्षुधाके लिए ावश्यक —३० सहस्र तुला	अन्न-धनिकोंके भंडारमें छिपा— ९० सहस्र तुला
	आतंक जनित अतिरिक्त क्षुधाके अभावसे बचत—३० सहस्र तुला
	उल्लास-स्फूर्तिके द्वारा आहारमें बचत— १५ सहस्र तुला
	त्याग और निवेदित उपवास द्वारा व्यवस्थित— ६ सहस्र तुला
१५० स० तु०	१५० स० तु०

मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि उस प्रधान मंत्रीको राजन्याय-द्वारा जो पुरस्कार मिला उसपर उन्हें और उस दिवंगत मंत्रीको तनिक भी आपत्ति नहीं है क्योंकि वह आजकी आर्थिक बुद्धिमत्ता और न्याय-नीतिके

बहुत कुछ अनुकूल ही था। फिर भी उनका मत है कि आजकी अभाव-पूर्ण स्थितिका वही उपचार कारगर हो सकता है जो देर-साध्य न होकर तात्कालिक हो, और वैसा उपचार कोई ऐसा ही अर्थ-कृषि-विशारद प्रस्तुत कर सकता है जो उन विद्याओंसे ऊपर सच्चे मानव-मनोविज्ञानका ज्ञाता हो और उस प्रधान मन्त्रीका पुरस्कार भी एक बार अपने सिरपर लेनेके लिए तैयार हो।

भोला गाँव

किसी नदीके किनारे एक गाँव बसा हुआ था, भोला गाँव। जैसा उस गाँवका नाम था, उसके निवासी भो एकदम भोले-भाले थे।

एकबार किसी दूरके नगरका एक चतुर बढ़ई उस गाँवमें आया।

नदी-किनारे जो लोग उसे दिखाई पड़े उन्हें इकट्ठा कर उसने कहा—'तुमलोग बड़े भाग्यवान् हो कि इतनो सुन्दर नदीके किनारे रहते हो। क्या इस नदीके पार भी तुमलोग कभी जाते हो?'

लोगोंने उसे बताया कि उस नदीके पार वे कभी नहीं जाते। नदीके पार जानेका उनके पास कोई उपाय भी नहीं है।

इसपर उस बढ़ईने उन्हें उपदेश देना प्रारम्भ किया—'बड़े दुःख और शर्मकी बात है कि जिस नदीके एक पारका पानी तुमलोग पीते हो उसके दूसरे पार तुम कभी गये भी नहीं!'

बढई उपदेशक बन बैठा और धीरे-धीरे गाँवके सभी लोग उसकी सभामें जुड़ गये।

उनके घर और खेत सभी नदीके इस पार थे और उस पार जानेका उनके मनमें पहले कभी कोई विचार नहीं आया था। उस उपदेशसे प्रभावित होकर उन्होंने उपदेशकसे प्रार्थना की कि वह नदीपार जानेका कोई उपाय उन्हें बताये।

गाँवभरकी फ़सलके आधे अनाजकी क़ीमतपर उसने गाँववालोंको उस पार ले जानेका सौदा तय कर लिया।

उपदेशकके नगरकी झीलमें नावें चलती थीं और वह स्वयं जातिका बढ़ई था ही। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि अपने कुटुम्बियोंको नगरसे बुलवाकर नावें बनानेका कारखाना इस गाँवमें खोल देगा। गाँववालोंके अनाजसे उसके कुटुम्बका अच्छी तरह पालन-पोषण होगा। नई

बनी नावोंपर वह गाँववालोंको उस पार लेजाकर छोड़ देगा और फिर अपने कुटुम्ब-सहित इस उपजाऊ खेतोंवाले गाँवमें चैनसे निवास करेगा।

गाँववालोंको अपने उपदेशसे सहमत कर, वह अपनी सभा विसर्जित करके अपने नगरको चला गया। उसी समय एक साधु उधरसे आ निकला।

उपदेशक और गाँववालोंकी सारी बात समझकर उसने उनसे कहा—'उपदेशकजीने एक बहुत बड़ा काम तुम्हारे सामने रखकर उसे पूरा करनेका उपाय भी जुटा दिया है। लेकिन वह काम अभी तुमने आधा ही समझा है। नदीके पार जानेकी ही नहीं वहाँसे लौटनेकी कठिनाई भी तुम्हारे सामने है।'

लौटनेकी क़ठिनाई! उन्होंने सोचा सचमुच लौटनेकी बात तो उनके लिए और भी अधिक चिन्तनीय होगी। उस पारसे लौटना भी उनके लिए अत्यन्त आवश्यक था, क्योंकि उनके घर और खेत सभी इसी पार थे।

अब पार जानेसे अधिक लौटनेकी चिन्ता उन्हे लग गई। लौटनेके लिए फ़सलका शेष आधा अनाज भी उन्हे उपदेशकको देना पड़ेगा—वे सलाह करने लगे।

'मैं तुम्हें लौटनेका एक ऐसा उपाय बता सकता हूँ कि उसके लिए फसलका आधा अनाज तुम्हें न देना पड़े और पहलेका दिया आधा अनाज भी लौट आये।' साधुने कहा।

गाँववाले इस साधुके पैरोंपर गिर पड़े। 'ऐसा उपाय बताकर आप हमें ज़िन्दगीभरके लिए अपना चेला बना लें।' उन्होंने कहा।

साधुने उपाय बता दिया, 'तुमलोग नदीके उस पार जाओ ही मत!'

वह सारा गाँव उस दिनसे उस साधुका शिष्य बन गया। लेकिन मेरे कथागुरुका कहना है कि किसी गहरे अर्थमें केवल उस गाँवको छोड़कर, दुनियामें नदियों, झीलों और समुद्रोंके किनारे जितने भी दूसरे गाँव और नगर बसे हुए हैं, वे सभी उस चतुर उपदेशककी सीखपर जमे हुए हैं और गाँव-गाँव नगर-नगरमें उसके कुटुम्बवालोंकी नावें चल रही हैं।

घर और घेरा

एक राजाने सुन्दर उपवनों और जलाशयोंसे सजा एक विस्तृत प्रदेश अपने किसी सुख अवसरपर ब्राह्मणोंको दान दिया।

उस परम रमणीक भूभागपर सौ ब्राह्मणोंने अपनी-अपनी सुविधा और इच्छाके अनुकूल घर बनवा लिये। राजाकी दी हुई दक्षिणा गृह-निर्माणके लिए यथेष्ट थी। उस भूखण्डपर अपनी इच्छानुसार जहाँ और जितनी चाहे भूमि प्रत्येक ब्राह्मण ले सकता था।

सब घरोंके बन जानेपर एक दिन उस नये उपनिवेशमें गृह-प्रवेशके लिए रक्खा गया। राजा भी उसके आयोजनमें सम्मिलित हुआ।

उस उपनिवेशमें ब्राह्मणोंका स्वागत करते हुए राजाने कहा—

'आप लोगोंने अपने-अपने घरोंके चारों ओर चहार दीवारी बनाकर जो धरती घेरी है वह बहुत कम है। मैं चाहता हूँ कि आप उसे यथा-शक्ति और बढ़ायें। जिस ब्राह्मणकी अपनाई हुई धरती सबसे अधिक होगी वही मेरे पितृगुरुके आदेशानुसार मेरा कुल-पुरोहित होगा।'

अगले मास राजा उस ब्रह्मपुरीमें फिर गया और देखा कि कुछ ब्राह्मणोंने, जिनकी घेरी हुई भूमि पहले भी अधिक थी, अपनी चहार-दीवारियोंको और भी विस्तृत करनेका काम लगा रक्खा था।

राजाके सत्कारमें ब्राह्मणोंकी सभा जुड़ी। उस सभामें एक ब्राह्मणने खड़े होकर घोषित किया कि उसकी धरती सबसे अधिक है और इसीलिए वही उस दिनसे राजकुलका पुरोहित है।

उस ब्राह्मणके दावेपर सभी ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। आर्थिक सामर्थ्यमें वह सबसे कम था और उसका घर तथा घेरा भी बहुत छोटा था।

फिर भी उसके दावेका निरीक्षण होना ही था। राजाके साथ सभी ब्राह्मण उसके स्थानपर गये। उन्होंने चकित दृष्टिसे देखा कि पिछली साँझ तक उसके घरके चारों ओर जो छोटी-सी चहार दीवारी थी वह भी अब ढही पड़ी थी। संभवतः रातों-रात ही उसे उसके मालिकने गिरा दिया था।

राजाने तुरन्त ही झुककर उस ब्राह्मणके पैर छू लिये।

× × ×

उसकी धरती ही सबसे अधिक और निस्सन्देह इतनी अधिक थी कि किसीके भी बड़े से बड़े घेरेमें नहीं आ सकती थी और इसी नाते वह परम समृद्ध ब्राह्मण ही उस क्षणसे राजकुलका पुरोहित भी था।

आस्तिक और नास्तिक

एक जाड़ेकी रात दो खटमलोंने किसी गृहस्थकी खाटमे जन्म लिया। दोनोंमे एक भक्त और ज्ञानी था दूसरा अज्ञानी।

ज्ञानी खटमलने अपने अनजान भाईको बताया कि संसारका सारा काम जिस देवताके प्रतापसे चलता है उसके दर्शन सबेरा होनेपर होंगे। उसकी पूजा प्रत्येक प्राणीको करनो चाहिए। अज्ञानी खटमलपर इस उपदेशका कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपने पालक गृहस्थके रक्तका आहार करता रहा।

सबेरा हुआ। गृहस्थने खाटको धूपमें डाल दिया। दोनों खटमलोंको सूरजकी धूप बड़ी सुखद लगी। ज्ञानी खटमलने अज्ञानीसे कहा—'देख, मैंने कहा था न कि सूर्यदेव प्रकट होकर गर्मी और प्रकाशका दान करेंगे। दर्शन कर उन्हें प्रमाण कर !'

अज्ञानी खटमलने उत्तर दिया—'मुझे तो सामने कोई सूर्यदेव नहीं दिखाई देते; हाँ, धूपकी मीठी गरमी बड़ी प्यारी लग रही है। मैं तो इसी-का मजा लेनेमें सन्तुष्ट हूँ।'

'मूर्ख ! कृतघ्न ! नास्तिक !' ज्ञानी खटमलने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा—'जिसकी दी हुई गरमीका तू सुख ले रहा है, उसीके अस्तित्व पर अविश्वास ! नरकमें भी तुझे स्थान न मिलेगा !'

'नरकमें न सही, इस खाटकी मनचाही धूप-छाँहमें तो मेरे लिए स्थान है ही। तुम्हारे और मेरे विश्वास और अविश्वाससे सूर्यके अस्तित्व और उससे या कहींसे भी आने वाली गरमीपर कोई रुकावट नहीं पड़ती।' अज्ञानी खटमलने कहा और खाटकी खुली पाटीसे बानोंकी छायामें खिसक कर आराम करने लगा

ज्ञानी खटमलने अज्ञानीके इस पलायनको घृणाकी दृष्टिसे देखा। सूर्य-की ओरसे मुख फेर कर वह देवताका अपमान नहीं करना चाहता था। इतना ही क्यों, सूर्यका ज्ञानी उपासक वह प्रत्यक्ष देवताकी ओर अग्रसर होना ही अपना धर्म समझता था। खाटकी पाटीसे उतर कर वह धरती-पर चला—सूर्यकी ओर—खुले आँगनकी राह—द्वारकी देहरीके पार—घरके बाहर वाले मैदानमें। उस मैदानका इस ज्ञानी खटमलके लिए कोई आदि-अन्त न था। तेज़ धूपसे उसकी धूल तप उठी थी। ज्ञानी खटमल का शरीर उसके सम्पूर्ण ज्ञान-ध्यान-सहित उसीमें भस्म हो गया!

कुत्तोंके लिए

एक राजाने अपने राज्यके गुणी एवं प्रतिष्ठित जनोंके एक बड़े सम्मेलनका आयोजन किया। इस सम्मेलनसे उसका प्रमुख अभिप्राय यही था कि वह देशकी विशिष्ट जनताके निकटतर सम्पर्कमें आकर उसका अधिकाधिक सहयोग और सम्मान प्राप्त करे।

देशके सभी विद्वान्, कलाविद् और श्रेष्ठजनोंके पास उसने निमन्त्रण भेजा और उनसे अनुरोध किया कि वे उस सभामें उपस्थित होकर राज-करोंसे यथायोग्य सम्मान ग्रहण करें।

सम्मेलनके निश्चित अवसरपर केवल एकको छोड़ सभी निमन्त्रित जन उपस्थित हो गये। जो एक व्यक्ति उपस्थित नहीं हुआ वह राजनगरके समीप एक अन्य प्रदेशका निवासी था और उस वनमें एक छोटा आश्रम बनाकर रहता था। अपने विशिष्ट विचारोंकी दार्शनिकताके लिए वह प्रसिद्ध था और उसकी विचारधाराका कुछ लोगोंपर प्रभाव भी था।

इस व्यक्तिकी अनुपस्थितिसे राजाने अपना कुछ अपमान समझा और उसे चिन्ता हुई। अपने दरबारियोंसे उसने परामर्श किया। अन्तमें एक दरबारीने राजाको आश्वासन देते हुए कहा—

'महाराज, उस आदमीको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उसे बुलाना कोई बड़ी बात नहीं। आज रातों-रात उसे दरबारमें बुलाया जा सकता है। वह स्वयं पयादे पाँव दौड़ा हुआ यहाँ चला आयेगा।'

इस दरबारीके परामर्शके अनुसार राजाकी ओरसे एक पत्र उस दार्शनिकके नाम लिखा गया। पत्रका अभिप्राय यही था कि वह तुरन्त ही राजा-द्वारा आयोजित सम्मेलनमें उपस्थित हो; उसे यथेष्ट अन्न, वस्त्र और द्रव्यकी दक्षिणा प्राप्त होगी। इस पत्रको लेकर एक राजदूत उस व्यक्तिकी ओर रवाना हो गया।

अगली सुबह दूतके पीछे-पीछे वह दार्शनिक राज-दरबारमें उपस्थित हो गया।

राजाका सम्मेलन उसी दिनसे बड़े धूम-धामसे प्रारम्भ हुआ। गुणी और विद्वान्-जनोंको राजाने विविध प्रकारके सम्मानों और अलंकारोंसे समृद्ध किया और उन्होंने भी अपने गुण और कलाका कोई कौशल राजाके प्रशस्ति-गानमे उठा नहीं रक्खा। सम्मेलन बहुत सफल रहा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उस देरसे आये हुए दार्शनिकका भी राजाने यथेष्ट, बल्कि यथेष्टसे भी कुछ अधिक ही सत्कार किया।

अगले वर्ष राजाने फिर वैसा ही सम्मेलन बुलाया। गुणी एवं प्रतिष्ठित जनोंको वैसे ही निमंत्रण-पत्र भेजे गये। उस दार्शनिककी बात राजाको याद थी इसलिए उसने नियमित निमन्त्रण पत्रकी भाषामें अन्न, वस्त्र और द्रव्यकी दक्षिणा वाली बात उसको भेजे जानेवाले पत्रमें बढ़वा दी। वनसे राजनगर तक आनेके लिए कोई सार्वजनिक यातायातका साधन सुलभ नहीं था, इसलिए इस वनवासी दार्शनिकके लिए अबकी बार एक रथ भी राजाने दूतके साथ भिजवा दिया।

सम्मेलन प्रारम्भ होनेके एक दिन पूर्व ही देशका समस्त गुणी एवं प्रतिष्ठित वर्ग राजनगरमें जुड़ गया। इस दार्शनिकका रथ भी ठीक समय पर राजदरबारकी ड्योढ़ीपर पहुँच गया। राजाके संकेतपर कुछ राज-मन्त्रिजन उसका स्वागत करनेके लिए आगे बढ़े। किन्तु रथका पर्दा उठाने पर उसमें उस दार्शनिकके बदले केवल तीन अल्पवयस्क कुत्ते निकले। उनमेसे एकके गलेमें एक पत्र बँधा हुआ था। उसमे लिखा था—

'श्रद्धेय राजन्, गत वर्ष मेरे आश्रममे जन्मे हुए ये तीन कुक्कुर-शावक आपके पिछले वर्षके निमन्त्रणके समय बहुत छोटे थे और आपके राजनगर तककी यात्रा नहीं कर सकते थे। अन्न, वस्त्र और द्रव्यकी आवश्यकता मुझे इन्हींके भोजन-छादनके लिए थी और अब भी है। अब ये इतने बड़े हो गये हैं कि आपके नगर तक जा सकते हैं और आपने कृपा-पूर्वक वाहनके

लिए अपना रथ भी भेज दिया है। अस्तु, अबकी बार मैं स्वयं न आकर इन्हे ही सेवामें भेज रहा हूँ। अपनी प्रजा मानकर इनके भरण-पोषणका जो भी प्रबन्ध आप करेंगे उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँगा। सम्मानकी आवश्यकता मुझे नही है और न इन्हे ही है। अतएव मेरी उपस्थितिको अनावश्यक मानकर, आशा है, आप मेरे अनागमनको क्षमा करेंगे।'

× × ×

इस कथापर मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि वह राजदरबारी जिसने राजाको इस दार्शनिकके बुलानेकी युक्ति बताई थी, सचमुच इसे अच्छी तरह जानता था, वह पहले उस दार्शनिकका गुरु रह चुका था और अब उसका एक समर्थ मित्र और अनुयायी था।

नया व्यवसाय

किसी नगरके एक मध्यकोटिके व्यवसायीको एक नया व्यवसाय सूझा। अपना प्रचलित, प्रतिष्ठित व्यवसाय बन्द करके उसने अपने धनिक मित्रों, परिचितों और अपरिचितोंको इस आशयके पत्र लिखने प्रारम्भ किये कि वह बहुत कठिन आर्थिक संकटमें है और सौ मुद्राओंकी सहायता पाकर वह उस संकटसे मुक्त और अपने सहायकका चिर अनुगृहीत हो सकता है। इस प्रकारके कुल एक सहस्र पत्र उसने लोगोंको लिखे। इस नये व्यवसायसे उसकी मान-प्रतिष्ठा लोगोंमे बहुत घट गई। जिन एक सहस्र व्यक्तियोंसे उसने पैसा माँगा उनमेसे कुल तीसने उसकी प्रार्थना स्वीकार की—दसने मुँहमाँगा धन उसे दे दिया और बीसने आधा-तिहाई देकर ही अपना पिण्ड छुड़ाया। फलतः घरकी भी पूँजी खाकर वह धीरे-धीरे एक निर्धन भिखारीके ही स्तरपर पहुँच गया और अन्तमें एक भिखारीकी ही मौत मर गया।

मरकर जब वह स्वर्गमें पहुँचा तो स्वर्गके न्यायालयके सामने आनेके पहले ही उसने अर्जी लगा दी कि उसका न्याय बीस वर्षके लिए स्थगित कर दिया जाय। स्वर्गके नियमोंके अनुसार उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और उसे स्वर्ग और पृथ्वीके बीच भुवर्लोकमें रहनेका स्थान दे दिया गया।

बीस वर्ष बाद जब वह स्वर्गके न्यायालयमें उपस्थित हुआ तबतक वे सभी एक सहस्र मनुष्य, जिनसे उसने धनकी याचनाएँ की थीं, पृथ्वीका जीवन समाप्त करके स्वर्गमें पहुँच गये थे।

स्वर्ग-लिपिकोंकी बहियोंके अनुसार वह व्यक्ति ९७० व्यक्तियोंका सौ-सौ मुद्राओंका और २० व्यक्तियोंका सौ-सौसे कुछ कम, कुल मिलाकर

९८,२०० मुद्राओंका ऋणी था। पहले ९७० व्यक्ति वे थे जिन्होंने उसकी याचनापर उसे कुछ भी नहीं दिया था और बीस वे थे जिन्होंने आंशिक रूपमे उसकी प्रार्थना स्वीकार की थी।

'भूलोकमे जब कोई याचक किसी याच्यसे कोई ऐसी वस्तु माँगता है, जो याच्यके पास देने योग्य मात्रामें विद्यमान होती है तो तुरन्त ही वह याचक याच्यका उस वस्तुका ऋणी हो जाता है। यदि याच्य वह वस्तु उसे दे देता है तो सहज लोक-दृष्टिमे वह याचकको अपना ऋणी बनाता ही है और उसका लेन-देन वहीं उनके पारस्परिक दान और कृतज्ञताके विनियोग-द्वारा बराबर हो जाता है, किन्तु यदि नहीं देता तो याच्यकी स्वर्गिक सम्पत्तिमेसे तुरन्त ही उस वस्तुके बराबर सम्पत्तिका क्षय हो जाता है, और इस प्रकार भी वह याचक उस याच्यका ऋणी हो जाता है'—प्रधान लिपिकने याचकके सम्बन्धमे स्वर्गके नियमका स्पष्टीकरण करते हुए आगे कहा—'इस व्यक्तिके कारण इन ९९० व्यक्तियोंके स्वर्ग बैंकमेसे ९८, २०० मुद्राओंकी क्षति हुई है, इसलिए यह इतनी सम्पत्तिका देनदार है।'

'मैं इन ९९० व्यक्तियोंका ऋणी नहीं हूँ। स्वर्गके करेंट बैंकसे ऊपरके रिजर्व बैंकसे दो लाख मुद्राएँ मैं उन्हे दे चुका हूँ और इस प्रकार मैं उनका ९८, २०० मुद्राओंका ऋणी नहीं हूँ बल्कि १,१०,८०० मुद्राओंका दान ही मैंने उन्हें किया है।'

उस व्यक्तिके इस दावेकी तुरन्त जाँच हुई। सचमुच इन एक हजार व्यक्तियोंके नये खाते स्वर्गके ऊँचे रिजर्व बैंकमें खुल गये थे और उनमें दो-दो सौ मुद्राएँ प्रत्येकके नाम जमा थीं। न्यायालयमे निमंत्रित उन एक सहस्र व्यक्तियोंने आश्चर्यके साथ देखा कि जिन काग़ज़के टुकड़ोंपर उसने उन्हे सौ-सौ मुद्राओंकी याचनाके लिए पत्र लिखे थे वे वास्तवमें पीठकी ओर इस बड़े बैंकके छपे हुए चेक-पत्र ही थे और उनपर दो-दो सौ मुद्राएँ उनके पास याचकके हस्ताक्षरोंके साथ लिखी हुई थीं। स्वर्गिक

सम्पत्तिके नाते वह स्वयं एक समृद्ध व्यक्ति था। किन्हीं सूक्ष्म देही देवदूतों द्वारा वे बैंक-चेक उन व्यक्तियोंकी रद्दीकी टोकरियोंसे निकाल कर इस बैंकमें जमा कर दिये गये थे।

न्यायाधीशने सब बातोंपर विचार कर निर्णय दिया—

'इस व्यक्तिने अपने असाधारण, गुप्त व्यवसाय-कौशल-द्वारा एक सहस्र व्यक्तियोंको अपना ऋणी और साथ ही अक्षय धन-सम्पन्न बना लिया है। पृथ्वी और स्वर्गके चालू बैंकोंमें जमा किया हुआ धन क्षीण हो सकता है। किन्तु स्वर्गके रिजर्व बैंकमें जमा किया हुआ कभी नष्ट नहीं होता, क्योंकि वह मूल धन कभी निकाला नहीं जा सकता और उसका ब्याज सौ प्रतिशत प्रतिवर्षकी दरसे बराबर डिपाजिटरके चालू बैंकोमें कभी भी ट्रांसफर कराया जा सकता है। पृथ्वीके मनुष्योंका इस रिजर्व बैंकमे हिसाब खोलना हम प्रोत्साहित नहीं करते, क्योंकि इससे देवलोककी सम्पत्तिका ही ह्रास है। इस व्यक्तिने अपने व्यावसायिक साहस और चातुर्यसे एक सहस्र नये मनुष्योंका हाथ देवलोककी सम्पत्तिमें डाल दिया है। इसे हम यही दंड दे सकते हैं कि यह पृथ्वीपर अगला जन्म एक भिखारीका पाये।'

कहते हैं कि अगले जन्ममें वह व्यक्ति एक भिखारी ही हुआ। किन्तु समृद्धि उसके पीछे लगी थी। उसके पिछले जन्मके ऋणी जनोंने अपनी अन्त:प्रेरणासे उसे खुले हाथों दान दिया और उस महान् भिक्षुकने भारतवर्षमे एक बड़े आधुनिक शिक्षामठकी स्थापना की और सम्मानपूर्ण वृद्धत्वको प्राप्त करके अपना वह जन्म पूरा किया। भविष्यदर्शियोंका अनुमान है कि अगले जन्ममें वह और भी बड़ा भिखारी होकर फिर इसी देशमे आयेगा और उसकी याचनाएँ इस देशकी आर्थिक विषमताओंको पाटकर जीवनकी प्रारंभिक आवश्यकताएँ सभीके लिए सुगम कर देंगी।

इस कथामें मेरे कथागुरुने एक छोटी-सी टिप्पणी अपनी ओरसे यह जोड़ी है—

'ऐसे भिक्षा-व्यवसायियोंके एक वर्गकी संसारको अभी आवश्यकता है और कोई भी व्यक्ति किसीसे कुछ याचना करनेके साथ-साथ, पाने और न पानेकी दोनों स्थितियोंमें, अपने याच्यका ऋण माननेका अभ्यास करके इस महान् भिक्षा व्यवसायके पथपर आगे बढ़ सकता है।'

न्यायकी चोरी

एक सुबह राजमहलके द्वारपर राजाके नाम एक पत्र पड़ा हुआ पाया गया। पत्र एक चोरका था, जिसमें सूचना दी गई थी कि वह उसी रात राजमहलमें चोरी करने आयेगा। पत्रमें संकेत था कि वह राजाकी कोई उचित ही चोरी करेगा और चोरी करनेसे पूर्व यदि वह पकड़ लिया जाय, या उसकी चोरी अनुचित सिद्ध हो तो वह न्यायोचित राजदंडका स्वयं प्रार्थी होगा।

उस रात राजाने अपने महलोंमें पहरे-चौकसीकी विशेष व्यवस्था करा दी।

तीन पहर रात बीते महलोंके एक भागमें शोर मचा। वहाँके प्रहरियों ने एक चोरको पकड़ लिया था। चोरके हाथ रीते थे। स्पष्टतया वह चोरी करनेसे पहले ही पकड़ लिया गया था।

राजपुरुषोंने उसे रातभर महलके बन्दीगृहमें रखा और अगली सुबह राजाके सामने न्यायके लिए प्रस्तुत किया।

'तुमने मेरे महलमें चोरी करनेका दुःसाहस किया है। यद्यपि तुम किसी वस्तुको चुरानेमें सफल नहीं हुए, फिर भी तुम्हारा यह प्रयत्न एक अनीति और अपराध है। अपने बचावके पक्षमें तुम कुछ कहना चाहते हो या न्याय-दंडके लिए प्रस्तुत हो?' राजाने कहा।

'दुःसाहस नहीं राजन्, मैंने यह एक सत्साहसका ही कार्य किया है। मेरा यह कार्य अपराधकी नहीं, न्यायकी सीमामें आता है। और अपने प्रयत्नमें मैं विफल नहीं, सफल ही हुआ हूँ। मेरे पाँव इसकी साक्षी दे सकते हैं।' चोरने कहा।

राजाने ध्यान-पूर्वक उसे देखा। वह तरुण और सुन्दर था; उसके

मुखपर सौम्य एवं शालीनताका तेज था। उसके पाँवोंमे एक जोड़ी बहुमूल्य सोने-सितारोंसे टँकी मखमली जूती थी।

यह निश्चित होते देर न लगी कि राजाकी ही वह जूती उसने अपने पाँवोंमें चुरा ली थी।

'अपनी घोषणाके अनुसार चोरी करनेसे पहले तुम पकड़े नहीं जा सके, तुम्हारे इस कौशलका मैं प्रशंसक हूँ; किन्तु इस चोरीको तुम न्याय कैसे कह सकते हो?' राजाके स्वरमे अब प्रसन्नता और प्रशंसाका पुट था।

'मैने आपकी उस जूतीकी चोरी की है जो आपके पाँवोंके लिए पुरानी और असुविधाजनक होकर अलग कर दी गई है। मैं एक निर्धन व्यक्ति हूँ अपने पाँवोंके लिए जूती कमानेमें असमर्थ! इस जूतीका अपहरण कर मैंने इसे पुनः उपयोगी बना दिया है। यह मेरे पाँवोंके सर्वथा अनुकूल है। दूसरेकी आवश्यकता पूर्तिमें बाधक हुए बिना अपने अभावकी पूर्ति, और अनुपयुक्तको उपयोगी बनाना अन्याय कैसे, सुनिश्चित न्याय ही क्यों नहीं है, राजन्?'

राजा चोरके इस उत्तरसे बहुत प्रसन्न हुआ और सम्मान-पूर्वक उसे मुक्त करनेकी आज्ञा देते हुए इच्छा प्रकट की कि वह उसे उसका कोई और अभीष्ट पुरस्कार भी देकर बिदा करना चाहता है।

'महाराजकी ऐसी इच्छा है तो मैं आपके महलोंसे एक और वस्तु पाना चाहता हूँ। वही एक वस्तु आपके महलोंमें ऐसी और है जो आपके लिए अनुपयुक्त और उपेक्षित हो चुकी है।' चोरने कहा।

राजाकी स्वीकृति पाकर चोरने उसका नाम बताया—राजाकी एक नई, नवयुवा रानी। राजाके महलोंमें इस समय बीस रानियाँ थीं; और यह वैवाहिक क्रममें सोलहवीं यद्यपि विशेष सुन्दर थी, फिर भी राजाकी प्रकृतिके अनुकूल न होनेके कारण उसके मनसे एकदम उतर चुकी थी और उपेक्षित जीवन बिता रही थी।

शीघ्र ही राजाको ज्ञात हो गया कि उस चोरके साथ इस रानीका विवाहके पूर्वसे गहरा प्रेम था और राजासे विवाह उसकी अनिच्छासे, केवल राजबलके कारण ही हुआ था ।

राजाने अगले दिन सहर्ष यथेष्ट धन-मानके साथ उस रानीको भी उस चोरके साथ बिदा कर दिया ।

× × ×

आगेकी कथा है कि कुछ वर्ष बाद जब राजाने अपने पुत्रको राज्य-भार देकर लोक-मंगलके लिए भिक्षाका पात्र सम्हाला तब उसकी शेष उन्नीस रानियोंमें से बारह अपने प्रियजनोंके पास चली गई और केवल सातने उसके साथ संन्यासकी दीक्षा ली । वानप्रस्थ आश्रममें वह अपने उस पुरस्कृत चोरका ही शिष्य बना । कहते हैं कि वह युवक चोर अपने युग का एक प्रमुख नैय्यायिक ऋषि माना गया और यह राजा उसका एक महान् शिष्य हुआ ।

नया द्रष्टा

किसी देशके राजाने एक बार पड़ोसी राजाओंके आक्रमणों और अपहरणोंसे दुखी होकर अपने कुलके आदि पिताका स्मरण किया। कुल-पिताने उसी रात स्वप्नमें दर्शन देकर उसे सान्त्वना दी और राज्यके छिने हुए भागोंको पुनः प्राप्त करनेका उपाय सुझा दिया। उसने बताया कि देबताओंसे प्राप्त जिस अजेय दण्डके बलपर उसने पृथ्वीका एकछत्र साम्राज्य अपने शासनमें स्थापित किया था वह राजकुलके पिछले शासक, वर्तमान राजाके पिताकी असावधानीसे पृथ्वीके भीतर कहीं खो गया है। उस राज-दण्डको खोजकर हस्तगत कर लेनेपर ही आक्रान्ताओंको पराजित कर खोये हुए साम्राज्यको भी पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

राजाने अपने इस स्वप्नकी चर्चा दरबारके ज्योतिषियोंके सामने की। ज्योतिषियोंने इस स्वप्नको अक्षरशः सार्थक बताया और उस अजेय दण्डकी स्थिति-स्थानका पता लगानेके लिए उन्होंने अपने पत्रे फैला दिये। बहुत-सी गणना करनेके बाद एक ज्योतिषीने बताया कि वह अजेय दण्ड राज-सिंहासनके उत्तरकी ओर डेढ़ सहस्र योजनकी दूरीपर स्थित एक विस्तृत बनके मध्य भागकी पृथ्वीको सहस्र योजनकी गहराई तक खोदनेपर प्राप्त किया जा सकता है।

डेढ़ सहस्र योजनकी उत्तराभिमुख यात्रा और तदुपरान्त उस स्थलकी एक सहस्र योजन तक खुदाई राजकीय साधनोंके लिए कोई सुगम कार्य नहीं था। राजा अपने मन्त्रियों सहित गहरे सोचमें पड़ गया।

उस यात्राके लिए अभियानका उपक्रम करनेसे पहले राजाने दरबारके शेष तीन ज्योतिषियोंको भी अपनी-अपनी गणनाएँ प्रस्तुत करनेका आदेश दिया।

दूसरे ज्योतिषीने हिसाब लगाकर बताया कि वह दण्ड निस्सन्देह डेढ़ सहस्र योजनकी दूरीपर धरतीके भीतर एक सहस्र योजनकी गहराई पर है किन्तु उसके लिए अभियान उत्तरकी ओर नहीं, दक्षिणकी ओर होना चाहिए ।

शेष ज्योतिषियोंने भी उस दण्डको उतनी ही दूरी और धरतीके भीतर उतनी ही गहराईपर स्थित बताया, किन्तु तीसरेने उसकी दिशा-पूर्व और चौथेने पश्चिम बताई ।

उत्तर–दक्षिण–पूरब–पश्चिम ! चारों ज्योतिषियोंकी गणनाएँ परस्पर एकदम विपरीत थीं, यद्यपि वे चारों ज्योतिष विद्याके पारंगत विद्वान् थे ।

राजा अपने विभ्रम और चिन्ताके आवेशमे इन ज्योतिषियोंको कोई कठोर आदेश दे, इसके पूर्व ही एक तरुण, सामान्य स्तरके दरबारीने खड़े होकर कहा–

'महाराज ! इन चारों ज्योतिषियोंकी गणनाएँ ठीक हैं और उनकी पारस्परिक प्रतिकूलतामे इनका दोष नहीं है । खोये हुए राजदण्डकी खोज तनिक भी कठिन या देर साध्य नहीं है ।'

राजाकी आज्ञा लेकर यह युवक राजदरबारी आगे बढ़ा, राजसिंहासनको थोड़ी दूर स्थानान्तरित कर उसके नीचेकी पृथ्वीके भीतर तीन-चार हाथकी गहराईपर ही वह देव–प्रदत्त दिव्य धातुओंका बना राजदण्ड चमकता हुआ मिल गया ।

× × ×

असाधारण सीमाओं तक उपार्जित विद्या और ज्ञानके चक्षुओंसे जो वस्तु अति दूर देखी जाती है वह सहजदर्शी व्यक्तिके लिए अति पास भी हो सकती है । पाँव-तलेकी वस्तु दूरदर्शी अनुसंधायकके लिए किस प्रकार दुष्प्राप्य हो जाती है, इस सहज दर्शनका प्रवर्तक उस तरुण राजदरबारीको ही कुछ लोग मानते हैं । मेरे कथागुरुका कहना है कि उन महाविद् ज्योतिषियोंकी तुलनामें उस साधारण भौगोलिककी ही दर्शन-परम्पराका

युग अब समीप आ गया है और आते युगका मानव दूर कही जाने वाली अभीष्ट वस्तुओंको उतनी ही सुगमतासे अपने पास खोजनेकी क्षमता जगा लेगा, जितनी सुगमतासे आजका साधारण भूगोलका विद्यार्थी उपर्युक्त कथा के रहस्यको देख सकता है।

पहला ऋषि

आदिम युगकी मानव जातिका एक कबीला किसी वनमें रहता था। अन्य पशुओंका आखेट कर ये लोग उदरपूर्ति करते थे और उन्हीं पशुओंसे अपने रात्रिकालीन विश्रामको निर्विघ्न रखनेके लिए पेड़ोंपर मचानें बाँधकर सोते थे।

धीरे-धीरे वनके सहज खाद्य पशुओं—हिरन, शूकर, भालू आदिकी संख्या बहुत घट गई और भोजनकी उन्हे बहुत कमी पड़ने लगी। आखेटके लिए वे दूर-दूर तक जाकर भी अत्यल्प उपलब्धिके साथ लौटने लगे। भोजनकी कमीके कारण उनके शारीरिक बलका ह्रास होने लगा और अपर्याप्त मांसके बटवारेमें उनका पारस्परिक कलह भी बढ़ चला। यह कलह दिन-प्रतिदिन उग्र होता गया और इसके दैनिक संघर्षोंमें कबीलेके दुर्बलतर व्यक्तियोंकी जानें भी जाने लगीं।

अन्तमें एक दिन कबीलेके एक तरुण सदस्यने सुझाव रखा कि भोजनके लिए आखेट-यात्राको एक दिनके लिए स्थगित कर इस समस्यापर मिलकर कुछ सोचा जाय। वन्य पशुओंकी कमी तो एक निश्चित सत्य था, उस दशामें भोजनकी कोई दूसरी व्यवस्था खोजनेका प्रयत्न करना ही उसकी दृष्टिमें अनिवार्य था।

किन्तु उसके इस सुझावपर अमल करने वाला केवल एक ही व्यक्ति उस सारे कबीलेमें निकला—वह स्वयं ही। सभी लोग पशुओंकी खोजमें बाहर निकल गये और वह अपने मचानपर चिन्तनमें मग्न बैठा रहा।

सन्ध्या होनेपर पक्षियोंके झुण्ड उन वृक्षोंपर बसेरा लेनेके लिए आये। उनमेसे जो सबसे पहला पक्षी उसके शरीरसे टकराया उसे ही

उसने पकड़कर अपनी उदराग्निको शांत करनेका साधन बनाया। पक्षीका स्वाद नया होते हुए भी उसे विशेष प्रिय लगा।

इस व्यक्तिका अब यही क्रम चल पड़ा। दिनभर वह निश्चिन्त भाव से धरतीपर विचरण करता और सायंकाल अपने मचानपर पहुँच कर सबसे पहले हाथ लगे पक्षीका आहार करता, यद्यपि उसके शरीरसे टकराने और हाथकी पहुँच तक आने वाले पक्षियोंकी संख्या सदैव एकसे अधिक ही होती थी। उन पक्षियोंका स्वाद ही नहीं, उनका पोषक तत्त्व भी उसके लिए विशिष्ट प्रमाणित हुआ। प्रतिदिन एक पक्षीका आहार उसके लिए पर्याप्त था।

कबीलेके अन्य सभी सदस्योंके साथ उनका पूर्वक्रम ही चलता रहा। वे अपने शयनके पड़ोसी पक्षियोंके जागनेसे पहले वृक्षोंसे उतर जाते और एक पहर रात बीते अपने अधभरे पेट और पारस्परिक संघर्षसे चोट खाये शरीरोंको लिए मचानोंपर चढ़ते। उन्हें यह पता ही नहीं लगा कि उनके लिए विशेष उपयोगी और सहजप्राप्य भोजन प्रचुर मात्रामें उनके इतने समीप था।

× × ×

कुछ इतिहासकार कहते हैं कि वह कबीला कुछ ही वर्षोंमें भूख और पारस्परिक युद्धके कारण नष्ट हो गया और उसका वह पक्षी-भक्षी सदस्य ही हृष्ट-पुष्ट, सहस्र वर्षकी आयु तक जीवित रहा। किन्तु मेरे कथागुरु का कहना है कि उस कबीलेके वंशज ही आज भी सबसे बड़ी संख्यामें भूतलपर छाये हुए, भोजनकी खोजमें कठिन संघर्षोंमें रत, मृतप्राय जीवन बिता रहे हैं, और उस नये, प्रचुर मात्रामें निकट-सुलभ आहारको खोज निकालनेवाले व्यक्तिकी अल्पसंख्यक मानस-सन्तति ही संपूर्ण मानव-जाति को भोजनके उस अक्षय भंडारकी ओर आकृष्ट करनेके लिए प्रयत्नशील है। कथागुरुका यह भी संकेत है कि वह प्रथम विहग-भोजी मानव ही

मनुष्य जातिका सबसे पहला ऋषि था, उसके खाये हुए असंख्य पक्षी नये, स्वादिष्टतर शरीर लेकर आज भी भूतलके आकाशपर मंडराते रहते हैं और कोई भी व्यक्ति अपनी सान्ध्य-वेलाओंकी निश्चिन्त सावधानियों द्वारा उन्हें अपने स्वस्थतम आहारके लिए सहज ही हस्तगत कर सकता है।

भव-सागर

एक बड़ी झीलके किनारे बसा एक बहुत बड़ा गाँव था। झीलके उस पार ऊँचे रुपहले पर्वतकी चोटीपर बना एक सोने-सा जगमगाता मन्दिर गाँववालोंको दीख पड़ता था। उनका विश्वास था कि चाँदीके पर्वतपर बना हुआ वह मन्दिर शुद्ध स्वर्णसे देवताओं-द्वारा निर्मित किया गया था और उसमें भगवान् स्वयं निवास करते थे। चाँदीके पर्वतमे असंख्य रत्न यत्र-तत्र जड़े हुए थे और कोई भी वहाँ पहुँच कर उनका मनचाहा संग्रह कर सकता था। उस पर्वतपर दूध और अमृतकी नहरें बहती थीं और त्रैलोक्यकी सबसे बड़ी वैभवशाली हाट भी उसी पर्वतकी तलहटीपर लगती थी, जिसमें इन्द्रलोककी मदिर-लोचना अप्सराएँ विक्रयका कार्य करती थीं।

गाँववाले इस पार खेती करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे। अनावृष्टि-अतिवृष्टिके कारण अकाल और महामारियोके प्रकोप भी उन पर समय-समयपर पड़ते थे। वे सभी इस ओरके जीवनसे ऊबे हुए उस पार जानेको लालायित थे। किन्तु उस पार उस ऋद्धि-सिद्धिके देशमे पहुँचना और फिर उसकी चोटीपर साक्षात् भगवान्के मन्दिरमे प्रवेश कोई सुगम कार्य नहीं था। इस झीलकी गहराई अज्ञात और इतनी अथाह थी कि कोई जलपोत भी कभी इसपर तैरनेका साहस करता नहीं देखा गया था। गाँववालोंकी गणनाके अनुसार इस झीलका पाट भी असंख्य योजनका था। इतना सब होते हुए भी उस पारका वह देश अगणित पीढ़ियोंसे उस देशके निवासियोंका आराध्य बना चला आता था।

उस पारके कोई-कोई विशालकाय देवता कभी-कभी इन ग्रामवासियों में-से कुछ विशेष अधिकारी एवम् श्रद्धातुर जनोंको लेनेके लिए आते थे।

अपनी पीठ और कन्धोंपर लादकर और कुछ अधिक समर्थ जनोंको अपने हाथोंकी उँगलियोंमें ही लटका कर ये उस पार ले जानेका उपक्रम करते थे। इस प्रकार कितने लोग उस पार पहुँच जाते थे; यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु बीच पानीमे शिथिल होकर अनेक जनोंके डूबनेकी दुर्घटनाएँ इस पार खड़े गाँववालोंकी आँखों देखी एवम् सुपरिचित थीं।

एक बार अकाल और महामारीका ऐसा भयंकर प्रकोप इस गाँवपर आया कि सभी लोग त्राहि-त्राहि कर उठे। गाँव छोड़कर उस पार जानेके अतिरिक्त उनके पास कोई चारा न रह गया। लोगोंकी आंतरिक पुकार पर भूधराकार देवताओंका एक बड़ा वर्ग अबकी बार उनके गाँवमे आ गया।

इन दानव-काय देवताओंकी पीठों, शिरों और कंधोंपर सहस्रों मनुष्य चढ़ गये और उनसे भी दसगुने उनकी कमरोंमे बँधी कटि-मेखलाओंको पकड़कर लटक गये।

वे पानीमें उतरनेको ही थे कि उन ग्राम-मानवोंमे-से ही एकने ललकार भरे स्वरमें कहा—

'मेरे स्वजनो, तुम इन देवताओंकी कायाओंसे नीचे उतर आओ। इनके सहारे जानेवालोंमें से बहुतोंको पानीमें डूबते तुम अनेक बार देख चुके हो। इस उपायकी विफलता और भयंकरता तुम्हारी सुपरिचित है। वास्तवमें उस पार जानेके लिए इनके आश्रयकी तुम्हें तनिक भी आवश्यकता नहीं है। तुम मेरे साथ बिना कोई आश्रय लिये अपने पैरोंके सहारे इस जलाशयको स्वयं निर्विघ्न रूपमें पार कर सकते हो।'

इस तरुण, अति सामान्य दीखनेवाले ग्रामवासीकी सलाह माननेवालों की एक छोटी-सी संख्या उन लोगोंमें निकल आयी। तीव्र गतिसे जानेवाले भूधराकार देवताओंकी कायाओंपर लदे व्यक्तियोंके पीछे ये लोग भी पानीमें हिल पड़े। मानव-पग-गतिसे ही ये लोग अपने मानव नेताके साथ पानीमें आगे बढ़े। तटपर अवशिष्ट कुछ लोगोंके साथ इन पग-चारियोंने भी

सुदूर सामनेको जल-राशिमें बहुतेरे मानवोंको देवताओंके शरीरोंसे गिरकर जलमग्न होते देखा। किन्तु जब तक इन पदचारियोंकी गरदनें पानीके ऊपर थीं तब तक इन्हें अपनी कोई चिन्ता नहीं करनी थी। ये बढ़ते गये। आगे बढ़े हुए अनेक देवताओंको भी इन्होंने पीछे छोड़ दिया—उनकी गति अपने भार और वाहितोंकी सम्हालमे धीमी पड़ गयी थी। सूर्यास्तके पूर्व ही ये स्वयचारी उस झीलके पार रुपहले पर्वतकी तलहटीपर पहुँच गये। उनके उल्लास और आश्चर्यकी कोई सीमा न थी—विशेष कर यह देखकर कि वह विस्तृत झील तटवर्ती कुछ और भी उथली दूरियोंको छोड़कर कही भी डेढ़ गज़से अधिक गहरी नहीं थी।

× × ×

अब यह रहस्य खुला है कि अति प्राचीन युगमे वह उथली, समतला, केवल साढ़ेचार फ़ीट गहरी और नौ मील चौड़ी झील देवताओंने अपनी और मानवोंकी उस बस्तीके बीच कुछ विशेष अभिप्रायोंसे खोदी थी। अज्ञातके प्रति मनुष्योंकी भयकी प्रवृत्तिके कारण ही उन्हें इतने युगों तक स्वयम् भारवाहक बनकर उनके उत्तरणकी व्यवस्था करनी पड़ी थी और उसकी असंख्य विफलताओंका भी सामना करना पड़ा था। कहते हैं कि ग्रामवासियोंकी नयी पीढ़ीके उस नये मानवके स्वपद-अभियान और उससे प्राप्त प्रेरणासे ही इस रहस्यका उद्घाटन हुआ है और आगेके लिए देवता जन उस अप्रिय भारवाहनके कार्यसे बहुत कुछ मुक्त हो गये हैं। कुछ लोगोंका अनुमान है कि वह ग्राम्य मानव और कोई नहीं स्वयं उस स्वर्ण मन्दिरके निवासी भगवान् ही थे, जो कभी भी ग्रामवासी मानवोंसे बाहर नहीं थे और देवताओंकी विफलतासे द्रवित होकर उस उथली झीलसे पार आनेका सहज मार्ग दिखानेके लिए उनके बीच आ बसे थे। मेरे कथा-गुरुका कहना है कि किसी रहस्य-रीतिसे प्रत्येक मनुष्यकी वर्तमान स्थिति और उसके चरम अभीष्टके बीच वह झील आज भी अज्ञात-तला बनी

लहरा रही है किन्तु उसके पार जानेका नया साधन प्रचलित हो गया है और उसके पानीके कुछ नवीन, विशेष हितकर उपयोगके रहस्योद्‌घाटन भी भविष्यमें होने वाले हैं ।

वृहत्तरके लिए

किसी देशके दो पड़ोसी राज्योंमें पीढ़ियोसे वैमनस्य था। उनमें प्रायः खुलकर लड़ाई भी हो जाती थी और एक राज्यका भू-भाग जीतकर दूसरेमें संलग्न कर लिया जाता था।

एक बार ऐसे ही एक बहुत बड़े आक्रमणके अवसरपर एक राज्यकी सेनाने दूसरे राज्यकी सेनाको उसके प्रधान सेनापति सहित पराजित कर दिया। पराजित सेनाके पाँव उखड़ गये और आक्रान्ता सेनाने उसे उसकी राज्य सीमाके बाहर एक दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमे खदेड़ दिया। पराजित सेनापतिने अपने सैनिकों सहित ऊँचे पर्वतकी कन्दराओंमे शरण ली।

कुछ समय पीछे जब आक्रान्ता सेना लौट गई, तब इस सेनापतिने अपना सैन्य दल बटोरकर आक्रान्ता राज्यपर चढ़ाई करनेकी तैयारी की। अपने राज्य और राजाको बचानेकी चिन्ता इसे सबसे अधिक थी और प्राणोंपर खेलकर भी वह अपने कर्तव्यका पालन करना चाहता था।

किन्तु सेनापतिके अधीनस्थ एक छोटे सैन्याधिकारीने उसकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया। उसने कहा कि छिन्ने हुए राज्य और हारे हुए राजाको बचानेका कोई भी प्रयत्न अब उसका कर्तव्य नहीं है। सेनाके आधे सैनिक इस अधिकारीके कहनेमें आकर इसके साथ ही रुक गये। विवश हो, आधी सेनाको लेकर ही सेनापतिने आक्रान्ता राज्यपर आक्रमण करनेके लिए प्रस्थान कर दिया।

किन्तु जो होना था वह पहले ही हो चुका था। विजित राजाके राज्यपर विजयी राजाने पूरा अधिकार कर लिया था और राजाको बन्दी बना लिया गया था। इस दूसरे आक्रमणमे यह सेनापति अपनी अवशिष्ट सेनाके साथ मारा गया।

कुछ समय पश्चात् पराजित राजाको बन्दीगृहसे मुक्त कर दिया गया। वह विजयी राजाकी एक सामान्य प्रजाके रूपमें ग्लानिपूर्ण जीवनके दिन काटने लगा।

उधर उस छोटे सेनाधिकारीने अपने साथियोंकी सहायतासे पर्वतके शिखरपर एक सुदृढ़ क़िला बनाया। पर्वतके उस पारकी भूमिपर उसने खेती की। यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी और अनधिकृत पड़ी हुई थी। पर्वतके उसी ढालपर उसने धीरे-धीरे एक छोटा-सा नगर भी बना लिया।

इतना कर लेनेके पश्चात् उसने एक सैनिकको गुप्त रूपसे अपने राजाके पास भेजकर उसे राजपरिवार सहित वहाँ आनेका निमंत्रण दिया। व्यवस्थानुसार एक रात राजा अपनी रानियों, राजपुत्रों और पुत्र-वधुओं सहित निकल पड़ा और इस नये पार्वत्य नगरमें पहुँच गया।

क़िलेके द्वारपर इस छोटे अधिकारीने राजाका अभिनन्दन किया और भीतर ले जाकर उसे नव-निर्मित, रत्न-जटित सिंहासनपर बिठाया। राजाके सामने करबद्ध खड़े होकर उसने निवेदन किया—

इस पार्वत्य प्रदेशकी प्राकृतिक रमणीयता और समृद्धिने मुझे प्रधान सेनापतिकी और इस प्रकार परोक्ष रूपमें स्वयं महाराजकी आज्ञाका उल्लंघन करनेके लिए विवश कर दिया था। यहाँकी जलवायु अत्यन्त सुखद एवं अनुकूल है। यहाँ शरद् ऋतुमें मेघ-मालाएँ कभी भी सूर्यको नहीं ढकतीं और बारहों महीने रजनीके निरभ्र आकाशमें खिली हुई चन्द्रकलाएँ पर्वत-शिखरसे फूटनेवाले झरनोंमें अठखेलियाँ करती रहती हैं। पार्वत्य ढालके नीचे समुद्र तटपर फैली धरती अत्यन्त उर्बरा एवं धान्य-मयी है। यह देश विस्तारमें आपके और शत्रुके देशोंके सम्मिलित क्षेत्रफलसे भी अधिक है। यहाँके आदिनिवासी बहुत सीधे-सादे, शान्तिप्रिय, कृषि-कुशल तथा शक्ति एवं गुणके प्रति श्रद्धालु हैं। वे सभी अब हमारे मित्र और सहायक तथा आपकी प्रजा हैं। इस प्रदेशके गर्भमें कुछ स्थलोंपर बहुमूल्य

हीरादिक रत्नोंकी तथा कुछ अन्य उपयोगी धातुओंकी खानें भी है। कुछ दिनोंके निवासमें ही इन सबका आभास पाकर मैंने राजाज्ञाका उल्लंघन करके भी यहाँ बसनेका निश्चय किया था। अब अपना अभीष्ट कार्य पूरा कर लेनेपर मैं अपने उस अपराधके निमित्त समुचित राज-दण्डके लिए स्वयं को महाराजके हाथों समर्पित करता हूँ।'

'तुमने परम्पराके विरुद्ध चलकर राजाज्ञाका उल्लंघन अवश्य किया है, किन्तु अल्प और आक्रान्ताकी तुलनामें वृहत् और उन्मुक्तके लिए किया है। तुम्हारे लिए उपयुक्त दण्ड यही है कि इस नये राज्यके महामंत्रित्वका पदभार तुम सम्हालो और मेरी तथा राज-संतति समेत समस्त प्रजाजनकी अशेष कृतज्ञताके युग-युग तक भाजन बने रहो।' कहते-कहते राज-सिंहासनसे उठकर राजाने इस अधिकारीको गलेसे लगा लिया।

कहते हैं कि आक्रान्ता राजाके राज्यसे निकलकर इस राजाकी अधिकांश प्रजा इस नये प्रदेशमें आ बसी और सहस्रों वर्षो तक यह राज्य सभ्यता और संस्कृतिकी नई-नई दिशाओंमे फलता-फूलता रहा।

सिद्धिका अन्त

एक तरुण साधक रूपकी देवीका उपासक था। एक रमणीक वनस्थली मे रूप-देवीकी सुन्दर प्रतिमाको सम्मुख रखकर वह उसकी विधिवत् आराधना किया करता था।

अन्तमे एक दिन उसकी साधना सफल हुई। रूपदेवीकी प्रतिमाके सम्मुख ध्यानावस्थित उसने देखा—प्रतिमामें जीवनके लक्षण आविर्भूत हुए, उसके अंगोंमें चेष्टा आई और दूसरे ही क्षण उसके स्थानपर रूपकी देवी सजीव उसके सामने प्रकट हो गई। उसे लगा कि चार दिशाएँ गुणित होकर सहस्र दिशाओंमें बदल गई है और उसके शरीरके उन सहस्र पार्श्वोंपर उसे अक्षुण्ण-यौवना रूपदेवीका अनिर्वचनीय आलिंगन-सुख प्राप्त हो रहा है, सहस्र नेत्रोंसे वह उसके अनिन्द्य रूपको निहार रहा है और सहस्र मुखोंसे उसके अधरामृतका पान कर रहा है।

'आराध्ये मेरी! मैं चाहता हूँ कि तुम क्षण भरको भी अब कभी मुझसे विलग न हो। तुम सदैव इसी प्रकार मेरी अंग-संगिनी—' युवकने मन-ही-मन अपनी उपासिता देवीसे कहना प्रारंभ किया और उसकी बात पूरी होनेके पहले ही वह देवी अपने समस्त स्पर्शोंके साथ अन्तर्धान हो गई!

युवककी संवेदनापर हठात् वज्रपात हुआ। तिलमिलाकर उसने आँखें खोल दीं। सामने प्रतिमाके स्थानपर रूपकी देवी साकार, सजीव अब भी उपस्थित थी। उसके मुख और नेत्रोंमें अब मुग्धतापूर्ण आकर्षणके स्थानपर एक सौम्य करुणाकी मुद्रा उतर आई थी। देवीके होंठ हिले और युवककी कातर दृष्टिका उत्तर देते हुए उसने कहा—

'मेरे मिलनके निर्बाध स्पर्शमे ही तुमने विछोहकी कल्पनाको लाकर मेरे प्रयत्नको विफल कर दिया है। मुझे दुःख है, हम दोनों—तुम और मैं—अभी एक दूसरेके लिए उपयुक्त नहीं हैं!'

और कहते-कहते वह देवी पुनः प्रस्तरकी निर्जीव प्रतिमा-मात्र रह गई !

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि संसारका एक-तिहाई मानव-वर्ग अब भी उसी रूपदेवीका किसी प्रकट या अप्रकट रूपमें उपासक है; उसे अपनी उपासनाकी सफलताके क्षण बहुधा प्राप्त होते हैं, किन्तु संयोग-कामनाके रूपमें केवल अपनी विछोह-कल्पनाको ही बीचमें लाकर वह उन क्षणोंकी अनुभूतिसे वंचित रह जाता है।

ज्ञानके परदे

असंख्य यज्ञोंके फल और देवताओंके प्रसाद स्वरूप अन्तमें महाराजकी मनोकामना पूरी हुई। उन्हे एक और पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हो गयी। ज्योतिषियोंने कहा कि यह राज-पुत्र संसारकी सम्पत्तियोंका ही नहीं, सम्पूर्ण मानव प्रजाके हृदयोंका भी स्वामी और समर्थ शासक होगा।

महाराजकी चिन्ता अपने वंश और राज्यके संचालनकी नहीं प्रत्युत एक ऐसे आत्मजके अभावकी थी, जो प्रजाजनका अचूक शासक बनकर उसकी भौतिक सुरक्षाके साथ-साथ उसके सर्वतोमुखी विकासका भी परिवहन कर सके।

छह पुत्र उनके पहलेसे विद्यमान थे और उनमें सबसे बड़ेका शासन-सामर्थ्य अद्वितीय आँका जाता था—उसकी धनुषकी टंकारसे देश-देशान्तरके शूर सेनानी काँपते थे। किन्तु महाराजको उससे संतोष नहीं था।

महाराजका यह सातवाँ पुत्र सात वर्षका होते ही वनोंमें तपस्याके लिए चला गया।

सहस्र वर्षकी सर्वनिष्ठ तपस्याके पश्चात् उसकी साधना पूरी हुई। ब्रह्माजीने प्रकट होकर उसे सृष्टिके गुह्यतम बोध एवं ज्ञानका वरदान दिया।

राजकुमार अपने राजनगरको लौटा। उसकी वाणीसे निस्सृत ज्ञान-गरिमाने देश-देशान्तरके विद्वत्-वर्गको स्तब्ध कर दिया। भीड़ें उसके चरण छूनेके लिए उमड़ने लगीं। फिर भी प्रजाजनका बहुत बड़ा वर्ग ऐसा था जो उस ऊँचे ज्ञानका स्वाद नहीं ले सकता था और राजकुमारके ज्ञानोपदेशोंमें उसके लिए कोई रस नहीं था।

महाराजको कुमारके इस उपार्जनसे संतोष नहीं हुआ। उनके संकेत पर वह पुनः तपस्याके लिए चला गया।

सौ वर्षकी तपस्याके पश्चात् उसकी साधना सफल हुई। ब्रह्माजीने प्रकट होकर अपने पूर्वदत्त वरदान, राजकुमारके बोधितत्त्वपर एक झीना-सा आवरण-कवच डाल दिया। ऐसा करते ही राजकुमारका शरीर अनन्त सौन्दर्य-सम्पन्न एक षोडशवर्षीय कुमारका हो गया।

वह अपने नगरको लौटा। उसके रूपाकर्षणने देशके नर-नारियोंको मोह लिया। उसके अधरोंकी मुसकान और दृष्टिके संकेतको जोहनेके लिए असंख्य नर-नारियोंके मन और नयन उसके चारों ओर मँडराने लगे।

किन्तु मनुष्योंमें बुझी और अनजगी चेतनावाले व्यक्तियोंका एक बड़ा वर्ग ऐसा भी था कि जिसे इस रूप निमन्त्रणकी परवाह नहीं थी। ऐसे वर्ग के लिए राजकुमारके रूपमें कोई प्रेरणा नहीं थी।

महाराजको कुमारके इस उपार्जनसे भी सन्तोष नहीं हुआ। उनके संकेतपर वह फिर तपस्या करने निकल गया।

अबकी बार दस वर्षकी तपस्यासे ही उसकी साधना पूरी हो गयी। ब्रह्माजीने प्रकट होकर अपने पूर्वदत्त वरदानपर एक और आवरण डाल दिया। ऐसा करते ही राजकुमारकी आँखों और हस्तांगुलियोंसे अजस्र शक्तिकी तेजोमयी धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। इस तेजको अपने भीतर निहित रखने और इच्छानुसार भृकुटि-विलासमात्रसे बाहर प्रवाहित करने की क्षमता भी शीघ्र ही उसमें आ गयी।

वह पुनः अपने नगरको लौटा। महाराजने आगे बढ़कर नगर-द्वार पर उसका सोल्लास अभिनन्दन किया।

समूचे भूगोलकमे अब कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो उसके आकर्षण और आदेशके बाहर रह सके।

× × ×

वह राजकुमार ही तबसे इस भूमण्डलका प्रकट-परोक्ष शासक है और उसकी अखण्ड बाह्यसत्ताके परिधानमे सौन्दर्यका और सौन्दर्यके भी अन्तरालमें बोधका ही निवास है। कहते है कि तभीसे ज्ञानका सौन्दर्यके रूपमें और सौन्दर्यका शक्तिके रूपमें प्रकट होना अनिवार्य हो गया है।

विपदाके हाथ

समुद्री व्यापारियोंका एक दल अपने देशकी शिल्प-सामग्रियोंसे भरी नावोंका बेड़ा लेकर व्यापारको निकला। समुद्रके पार एक बड़ा समृद्ध राज्य था, जिसमें सोनेकी खानें थी। ये व्यापारी उसी देशको अपनी कला-कृतियाँ बेचकर बदलेमे स्वर्ण-सम्पत्तियोंसे भरे हुए लौटा करते थे।

इस बार आधी राह पार करनेके पहले ही ऐसी आँधी समुद्रमें आई कि सारा बेड़ा एक भिन्न दिशामे निश्चित पथसे बहुत दूर बहकर एक अपूर्व-परिचित निर्जन टापूसे जा टकराया। आँधी-पानी और पृथ्वीकी ठोकरोंसे वे नावें तथा उनकी विक्रय-वस्तुएँ भी किसी सीमा तक क्षत-विक्षत हो गईं।

किन्तु उन व्यापारियोंका साहस और बल अदम्य था। प्रतिकूल झंझा-का वेग कुछ कम होते ही उन्होंने डाँड़ सम्हालकर निश्चित पथपर लौटनेके लिए कूच बोल दिया। केवल एक व्यापारीने अपनी नाव नहीं बढ़ाई। उसने कहा—

'प्रतिकूल वायुका वेग अब भी प्रबल है। ऐसी स्थितिमे उस देशमे पहुँचनेकी आशा एक दुराशा-मात्र है। हमारी विक्षत विक्रय-सामग्रीका मूल्य आधा भी नहीं रह गया है। विपत्तिके जिन हाथोंने हमे यहाँ ला फेंका है उनकी मुट्ठीमें सम्भव है हमारे लिए कोई नई सम्पत्ति छिपी हो। इसे ही जाँचनेके लिए मैं इस द्वीपपर ही कुछ समय रुकना चाहता हूँ।'

दूसरे सभी व्यापारी उसकी इस मूर्खता-जनित कायरताकी परस्पर चर्चा करते, प्रतिकूल वायुसे क्षुब्ध लहरोंको बलपूर्वक चीरते हुए मन्द गतिसे आगे बढ़ चले।

अगले वर्ष ये व्यापारी अपने परिचित परदेशसे अबकी बार बहुत घाटेका व्यापार कर स्वदेश पहुँचे। उन्होंने देखा कि उनका वह छूटा हुआ साथी बहुत पहले अपनी नावको हीरोंसे भरकर वहाँ लौट आया है और वही अब देशका सबसे बड़ा धनिक है।

उस निर्जन टापूमें सोनेसे सहस्र गुने मूल्यवान् हीरोंके खेत थे।

× × ×

इस घटनाके पश्चात् अगणित साक्षियों द्वारा यह रहस्य स्थापित हो चुका है कि विपदाकी देवी जब किसी मनुष्यको अपने हाथोंकी मारसे विस्थापित करती है तब उसकी बन्द मुट्ठी मे उसके लिए निश्चित रूपमें कोई नई सम्पदा छिपी होती है—और वह उस स्थितिसे भागनेके लिए आतुर न हो तो अनिवार्यतः उसका भागी हो सकता है।

अनबिक मोती

पृथ्वीके अंचलपर एक ओर लहराता हुआ विशाल सागर था और उसके समीप ही धरतीकी गोदमे एक छोटा-सा पोखर।

सागरके गर्भमे बहुमूल्य मोतियोंकी राशि थी और पोखर था एकदम अकिंचन। सागरके वक्षपर मोती निकालनेवाले पनडुब्बोकी चहल-पहल रहती थी किन्तु पोखर बेचारा एकदम उपेक्षित था। वह अपने एकाकीपन के कारण बहुत दुःखी और सदैव उद्विग्न रहता था।

अपने कुलदेवता वरुणके दरबारमे उसने पुकार की।

वरुण देवने कहा—'समुद्रके प्रति तुम्हारी यह ईर्ष्या और दैन्य व्यर्थ है। किसी रात क्षण भरके लिए भी तुम शान्त होकर देखो, तुम्हारे पास समुद्रसे कहीं बड़ी सम्पत्ति है।'

पोखरने आशान्वित होकर वरुणके आदेशका पालन किया। क्षोभसे चंचल उसकी लहरोंके शान्त होते ही उसने देखा, उसकी छातीपर छोटे-बड़े असंख्य जगमगाते मोतियोंकी एक राशि छितर गई है। उसके हर्षका पारावार न रहा।

आकाशके तारोंका यह प्रतिबिम्ब उसने पहली बार ही उसके भीतर पाया था। किन्तु अगली भोर वे मोती उसके वक्षसे विलीन हो गये। दिन-भर कोई भी प्रशंसक उसके तटपर नहीं आया। समुद्रके ऊपर उठनेवाले मानवोंके मधुर कोलाहलको वह मन मारे सुनता रहा।

पोखरका सन्देह जगा। वरुणके दरबारमें उसने पुनः विलाप किया—'मुझे जो सम्पत्ति गत रात्रि मिली वह नश्वर एवं अवास्तविक है, उसका कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है। उस सम्पत्तिके लिए मेरी कोई पूछ-प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।'

वरुणदेवने उसके सन्देहको भ्रम-जनित बताते हुए परामर्श दिया कि वह धैर्य-पूर्वक अपनी अक्षोभकी साधनामे संलग्न रहे और फलकी प्रतीक्षा करे।

वरुणके वचनोंपर पोखरका विश्वास पूरा था। उसकी अक्षोभकी साधना चलती रही। अपनी रात्रि-कालीन सम्पदाको देख-देखकर अब उसके मनमें स्वतः समृद्धिकी भावना प्रबल होने लगी।

धीरे-धीरे समुद्रके सब मोती समाप्त हो गये। समुद्र पारकी जिस परम समृद्ध महासुन्दरी रानीके हाथों वे पनडुब्बे अपने मोती बेच आया करते थे वह स्वयं समुद्र और इस पारके देशके निरीक्षणके लिए अपने पोतपर सवार होकर निकल पड़ी।

सेवकों-परिचारिकाओंके साथ इस पारकी भूमिका दृश्य-दर्शन करती एक साँझ वह इस पोखरके तटपर आ पहुँची। प्रशान्त जलपर छितरे नभ-तारकोंका प्रतिबिम्ब देखकर वह इसके सौन्दर्यपर मोहित हो गई। पार्थिव मोतियोंसे ये अस्पृश्य मोती कहीं अधिक सुन्दर और सजीव थे।

पोखरमें जल-विहारके लिए उसने अनेक सुन्दर नौकाएँ डलवा दीं और मनोरम भवनोंके एक सुनिर्मित वृत्तने उस जलाशयको अपनी बाँहोंमें घेर लिया। अपने प्रशान्त जलमे दिन-भर अगणित मानवोंका क्रीडोल्लास भरे, और रात्रिकी निस्तब्धतामें आकाशकी सुदीप्त सम्पदा समेटे वह पोखर आज मानवोंका एक महान् पुष्कर तीर्थ बना हुआ है।

उसका सन्देश है कि बिकनेवाले मोतियोंका मूल्य कुछ कालके लिए भले ही अधिक लगा लिया जाय किन्तु अस्पृश्य, अनबिक मोतियोंकी मूल्यमत्ता ही वास्तवमें सर्वोपरि एवं स्थायी है और सृजनका सामर्थ्य भी इन्हींमें निहित है, और उद्विग्न चंचलतामें नहीं, प्रशान्त स्थिरतामे ही उनका उपार्जन किया जा सकता है।

अमृतके प्याले

बात बहुत पुरानी नहीं है। मनुष्यों और देवताओंके बीच युगानुयुगसे टूटा हुआ सम्बन्ध जब पुनः स्थापित हुआ और उनके पारस्परिक व्यवहार यथेष्ट स्नेह-सहयोग-पूर्ण हो गये तब देवताओंने निश्चय किया कि वे अपनी सर्वश्रेष्ठ वस्तु अमृतमें भी मनुष्यका हिस्सा लगायेंगे। फल-स्वरूप अपने स्वर्गसे अमृतकी एक धारा, पातालकी राह लाकर उन्होंने पृथ्वीके एक सुरक्षित एवं अपेक्षाकृत दुर्गम-से स्थलपर उसका स्रोत खोल दिया। मानव-जातिके कुछ समर्थ एवं अधिकारी जनोंको चुनकर उन्हें वे उस अमृत-स्रोत तक ले गये और उस अमृतको पीकर वे मानव-जन भी देवताओंकी भाँति अमर-अजर हो गये।

ये अमर मानव मानव-बस्तियोंमें लौटकर उस अमृत-स्रोतकी सूचना लोगों तक पहुँचाने लगे, और वहाँ तक उनका पथ-प्रदर्शन करनेका भी कुछ भार उन्होंने अपने ऊपर उठा लिया। इनके पथ-प्रदर्शनमें मनुष्योंकी एक बड़ी संख्याने उस अमृत-स्रोतकी ओर प्रस्थान किया और उनमेंसे कुछ और भी लोग वहाँतक पहुँचकर अमृत-पान द्वारा अमर बन गये।

मानव-जाति द्वारा अमृत-पानका यह क्रम अबाध, किन्तु बहुत धीमी गतिसे चलता रहा और दूसरी ओर मनुष्योंकी लौकिक उन्नतिका क्रम विशेष वेगके साथ आगे बढ़ा।

कुछ ही समय बाद अपने नये आविष्कृत साधनों-द्वारा उन्होंने प्रकट रूपमें उस अमृत-स्रोतको खोज निकाला और वहाँ तक पहुँचने योग्य एक सँकरा-सा किन्तु सुगम मार्ग भी बना लिया।

इस समय तक उनकी लोक-बुद्धि बहुत जागृत हो चुकी थी और वे प्रत्येक वस्तुको कम-से-कम श्रम और मूल्यमें पा लेनेका महत्त्व जान गये थे।

प्रत्येक मानव-बस्तीके लोगोंने अपने नगरके एक-एक व्यक्तिको चुनकर

उसे तैयार किया कि वह उस अमृत-स्रोत तक पहुँचकर स्वयं अमृतका पान करे और एक प्यालेमें भरकर अपने नगर-वासियोंके लिए भी लेता आये। उन्हे पता था, और यह बात बिलकुल ठीक भी थी, कि अमृतका एक बूँद एक सहस्र मनुष्योंको अमर बनानेके लिए पर्याप्त था। इस कार्यके लिए सर्व-श्रेष्ठ धातुके अत्यन्त सुविधा-जनक प्याले देशके महानगरके बड़े कारखानेमें ढालकर इन लोगोको दे दिये गये।

मानव-जातिके ये प्रतिनिधि अमृत-स्रोतकी ओर चले और उनमेसे अधिकांश वहाँ तक पहुँच गये। उन्होंने अमृत-स्रोतसे अमृतका पान किया और अपने-अपने प्याले भरकर अपनी बस्तियोंको लौट आये।

इन प्रत्यागत, अमरता प्राप्त मानवोंके स्वागतके लिए प्रत्येक बस्तीमें वहाँके लोग एक बड़ी सभामे एकत्र हुए और अपने अमृत-वाहकका अभिनन्दन करके उन्होंने उस अमृतका प्रसाद पाया।

किन्तु लाये हुए अमृतकी उन बूँदोंमें अमृतका नहीं, उस प्यालेकी विशुद्ध, गली हुई धातुका ही स्वाद और प्रभाव था।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि अमृत लेकर लौटे हुए कुछ अमर-जनोंका अपने समीप एकत्र समुदायोंको अपने प्यालोंका 'अमृत' पिलानेका क्रम अब भी चल रहा है। वे अपने समुदायोके अनुरोधसे विवश होकर ऐसा कर रहे है। कुछ थोड़े-से अमर जनोने ऐसा करनेसे इनकार भी कर दिया है, किन्तु आजके व्यवसाय-कौशलके युगमे एक बड़ी संख्या ऐसे अमृत-वितरकोंकी भी उत्पन्न हो गई है जिन्होंने अमृत-स्रोत तक जानेका कभी भी कष्ट नहीं उठाया। कथा-गुरुका यह भी स्पष्ट संकेत है कि अमृत संसारकी किसी भी धातु या तत्त्वसे निर्मित पात्रमें भर कर पुन: शुद्ध रूपमें उससे वापस नहीं निकाला जा सकता और अमरत्व प्राप्त करनेके लिए सीधे अमृत-स्रोतसे ही, बिना किसी धातु या अपने पराये हाथसे उसका स्पर्श किये, उस अमृतका पान करना अनिवार्य है।

ईश्वर या दर्पण ?

मेरे जीवनका लेखा-जोखा जाँचनेके बाद देवताओंने मुझे ईश्वरके महलमें जानेका 'पास' दे दिया।

ईश्वरके परम समृद्ध, असाधारण रूपमें सुसज्जित ड्राइंग हॉलमे मैंने प्रवेश किया।

हॉलके भीतर सामनेकी दीवारपर टँगे हुए ईश्वरके सैकड़ों चित्र थे। मेरे पथ-दर्शकने बताया कि वे विविध युगोंमें विविध धर्माचार्यों और चित्र-कारों द्वारा बनाये हुए ईश्वरके ही चित्र थे। उनकी वेश-भूषा, रूप-रंग, आकार-प्रकार और भाव-भंगिमामें बहुत विविधता होते हुए भी वे मूलतः एक ईश्वरके ही चित्र थे।

'ईश्वरके ये चित्र एकसे-एक सुन्दर और अत्यन्त भव्य हैं' मैंने अपने पथ-प्रदर्शकसे कहा—'लेकिन मैं उसके चित्रोंको नही, स्वयं उसे ही देखना चाहता हूँ। क्या वह स्वयं आकर इस हॉलमें नहीं बैठते ?'

'अवश्य आप उनसे मिलेंगे' मेरे पथ-दर्शकने कहा—'चलिए, स्नानादि से शुद्ध और स्वस्थ होकर आप जब यहाँ फिर आयेंगे तब उनके दर्शन पायेंगे।'

ईश्वरीय महलके स्नान-गृहमें जाकर मैंने राहके मैले कपड़े उतारकर धूल और पसीनेसे सने अपने शरीरको साफ़ किया।

ईश्वरके ड्राइंग हॉलमें जब मैं लौटा तो मेरे पथ-दर्शकने कहा—

'ये सभी चित्र यहाँ आने वाले विविध चित्रकारोंके बनाये हुए ईश्वरके ही चित्र हैं। लेकिन ये चित्र ही नहीं, ईश्वरके दर्शन-कक्षकी खिड़कियोंके पर्दे भी है। इनमें-से किसी भी चित्रित पर्देको उठाकर आप उसके पीछे वाली खिड़कीसे ईश्वरके दर्शन कर सकते हैं।'

मैंने उनमेंसे एक चित्रका पर्दा हटाकर देखा और ईश्वरके असीम सुन्दर, परम आत्मीय रूपका दर्शन पाकर उसीमें खो गया।

कुछ समय बाद जब उस अनुभूतिके पीछे मेरी भौतिक स्मृतियोंवाली चेतना भी लौटी तो मैंने देखा, मेरे सामने वह और कुछ नहीं, केवल एक स्वच्छ दर्पण ही था।

कीलित और गतिशील

दीक्षान्त विसर्जनके समय महास्थविरने भिक्षुओंके उस वर्गको उपदेश दिया—'निकटतम गृहस्थसे उसकी सुविधानुसार जो कुछ उपलब्ध हो उसीसे अपनी उदर-पूर्ति करना। भिक्षाके लिए दूराटन लोक-सुविधाके प्रतिकूल एवं अश्रेयस्कर होगा।'

लोक-मंगलकी साधनाके निमित्त सभी भिक्षु व्यवस्थानुसार वितरित होकर अलग-अलग पुरियोंमें बस गये। महास्थविरकी प्रेरणा थी, समृद्ध नागरिकोंने यत्र-तत्र उनके निवासके लिए पर्ण-विहार अपने भवनोंके समीप बनवा दिये।

लोक-चेतनाके उन्नायक ये भिक्षु गृहस्थोंके सम्मान्य थे। उनका भोजन-सत्कार उनके लिए अति सुगम एवं प्रिय था। दैनिक अन्नदानके बदले भिक्षुसे दैनिक उपदेश लाभ उनके लिए चिर स्वीकार्य था। सभी भिक्षुओंके नाते इस प्रकार अपने समीपके एक या स्वल्पाधिक गृहोंसे जुड़ गये। महास्थविरका आदेश भी ऐसा ही कुछ था और उसीका उन्होंने पालन किया था।

जिस प्रदेशमें यह भिक्षु-वर्ग वितरित था उसमें महास्थविरका पदार्पण हुआ। सभी भिक्षु मध्यवर्ती नगरके मठमें उनके दर्शनोंके निमित्त एकत्र हुए। केवल एक भिक्षु नहीं आया। सूचना थी कि उसने एक पुरीमें अपने निवासके हेतु निर्मित कुटीरमें एक रात आग लगा दी थी और दूराटनके लिए निकल गया था।

कुछ भिक्षुओंने उस अनुपस्थित भिक्षुकी भी महास्थविरके सम्मुख चर्चा की। उन्होंने अपने इस वियुक्त बन्धुके प्रति दयार्द्र सहानुभूति प्रकट करते हुए बताया कि वह महास्थविरके आदेशका पालन करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

महास्थविर मुसकराये। बोले—

'मेरे आदेशका पालन उसने भी किया है। सदैव अपने आवासके निकटतम गृहस्थसे ही उसने भिक्षा ली है। अन्तर इतना है कि उसका आवास उसके साथ ही निरन्तर गतिशील है और तुम्हारी गति तुम्हारे कीलित आवासमें बँध गई है।'

प्रेम-रास

एक भक्त गृहस्थके घरमें चूहोंका एक बड़ा कुटुम्ब रहता था। उस घरमें भागवतकी कथा होती थी। मूषक-कुटुम्बकी चुहियाँ भी उस कथाको सुनने निकल आती थीं। चूहे अधिक आलसी और अभक्त थे, वे अपने बिलोंमें ही पड़े रहते थे।

भागवतकी कथाका उन चुहियोंपर गहरा प्रभाव पड़ा। कृष्णके प्रति गोपियोंके प्रेमका रंग उनपर ऐसा चढ़ा कि वे भी किसी परम सुन्दर मन-मोहनके साथ रास-विलासकी कामना करने लगीं।

विधाताने उनकी प्रार्थना सुनी और कामना पूरी कर दी। एक अति सुन्दर, नवल किशोर चूहा एक सुबह उनके बीच कहींसे आ गया। चुहियोंने अपने बिलोंसे झाँककर उसे देखा और उसपर मोहित हो गईं।

अगली रातकी भागवत-कथाके पश्चात् जब घरके स्त्री-पुरुष सो गये, आधीरातके समय इस चूहेने टेर लगायी। सभी चुहियाँ अपने बिलोंसे निकल कर इसके पास घिर आईं और उसके साथ प्रेम-रास रचानेके लिए उसके सकेतकी प्रतीक्षा करने लगीं।

किन्तु इस नये चूहेने कहा—

'सुन्दरियो, मैं तुम्हारे साथ प्रेम-रास करनेके लिए बहुत उत्सुक था, किन्तु तुम्हारी सुन्दर पूँछें कहाँ हैं? उनके बिना, तुम स्वयं उलटकर देख लो, तुम कितनी असुन्दर लगने लगी हो। जब-तक तुम मेरी और अपनी दृष्टिमें सम्पूर्ण एवं सुन्दर न हो तब तक प्रेम-रास कैसे रचाया जा सकता है?'

चुहियोंने पीछे घूमकर अपने शरीरोंको देखा, उनकी दुमें सचमुच कटी हुई थीं। बिलोंसे प्रेमाभिसारके लिए निकलते समय वे उनके पतियोंकी गर्दनोंमें फँसी हुई टूटकर वहीं रह गई थीं।

चुहियोंका प्रेम-रास नही रच पाया। उनकी यह प्रेम-कामना ही अनुचित थी या पतियोंके साथ उनके पुच्छ-बन्धनमें ही कोई दोष था, इस सम्बन्धमें धर्म-नीतिकारोंका कोई सुनिश्चित, सर्व-स्वीकृत मत अभी तक नहीं बन पाया है।

अज्ञातका मोल

नदीके किनारे मछुओंका एक गाँव था। ये लोग नदीमें जाल लगाकर मछलियोंको पकड़ते थे। मछली ही उनका भोजन और व्यापारकी जिन्स थी।

एक बार कुछ मछवाहे अपनी डोंगीपर सवार, बीच नदीमे जाल बिछाये मछलियाँ पकड़ रहे थे। संयोगवश मछलियोंके बीच एक घोंघा भी उसमें आ फँसा।

सन्ध्या समय उन्होंने किनारे पहुँचकर दिन भरकी कमाईका बँटवारा किया। उस घोंघेको कोई भी अपने हिस्सेमे नहीं लेना चाहता था। स्पष्ट-तया वह कोई खानेकी वस्तु नहीं थी। किन्तु कुछ सोचकर एक मछवाहेने उस घोंघेको अपने हिस्सेमे स्वीकार कर लिया। घोंघा इतना बड़ा और भारी था कि उसे लेनेपर एक भी मछली उसके हिस्सेमें नहीं पड़ी। लेकिन वह एक नई, सर्वथा अज्ञात वस्तु थी और इसीलिए उसके प्रति कुतूहल इस मछवाहेके मनमें जाग उठा था। उसके घरमें रात और अगले दिनके भोजनके लिए पर्याप्त मछलियाँ रक्खी हुई थीं और अगली रातके लिए नई पकड़नेमें उसे कोई सन्देह नहीं था। वह घोंघेको अपने घर ले गया।

रातमें घोंघेने अपने खोलसे बाहर मुँह निकाला और मछवाहेसे कहा—

'मुझे स्वीकारकर तुमने मेरी रक्षा ही नहीं की, अपने लिए भी बड़ी बुद्धिमत्ताका काम किया है। वे लोग मुझे नदीकी रेतमें फेंक देते और धरतीपर चलनेमें असमर्थ होनेके कारण मैं वहीं पड़ा-पड़ा कुछ दिनोमें मर जाता। मैं तुम्हारे किसी उपयोगका नहीं हूँ, फिर भी तुम्हे उस जगह ले

जा सकता हूँ जहाँका मैं निवासी हूँ और जहाँ पहुँचनेपर मेरी जातिके दूसरे बन्धु-बान्धव तुम्हें मालामाल कर सकते हैं।'

घोंघेने आगे बताया कि वह समुद्रका निवासी है और समुद्रमें मिलने वाली उस नदीकी राह, नदीके उद्गम मानसरोवरकी यात्राको गया था—और वहाँसे लौटते हुए ही उसके जालमें पकड़ लिया गया था।

घोंघेके आदेशानुसार अगली सुबह उस मछवाहेने उसे साथ लेकर नदी में अपनी डोंगी खोल दी। कुछ दिनोंकी यात्राके पश्चात् वह समुद्रकी सीमापर जा पहुँचा।

कहते है कि शंख, सीप और मोतियोंका सबसे पहला व्यापारी वही हुआ।

नया व्यवधान

मनुष्यको स्वर्गसे धरतीपर उतरे दो युग बीत गये थे। किन्तु विधाता ने जिस अभिप्रायसे अपनी मनु-सन्ततिको पृथ्वीपर भेजा था उसकी पूर्तिके कोई लक्षण नहीं दीख रहे थे। मानव-जनकी भू-जीवनमें कोई रुचि ही नहीं जगी थी। उस प्रारम्भिक कालमें मानव जातिकी ज्येष्ठा सहोदरा देव-जातिपर ही यह दायित्व था कि वह मनुष्योंके पार्थिव जीवनके लिए यथेष्ट आकर्षण और सुविधाएँ पृथ्वीपर प्रस्तुत करे। किन्तु देवताओंके किये सभी उपाय विफल सिद्ध हो रहे थे।

स्वर्गलोकमें देवताओंकी सभा जुड़ी। मानव जातिके प्रतिनिधि भी उसमें उपस्थित थे। उन्होंने कहा—'भौतिक जीवनमें हमे कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती, इसलिए पृथ्वीपर रहनेमें हमारी कोई रुचि नहीं है। केवल एक नई वस्तु हमें वहाँ मिली है—दुःख नामकी। किन्तु वह भी इतनी नगण्य और दुर्बल है कि हमारी सहज सुखमयताका हाथ लगते ही उसीमें विलीन हो जाती है।'

बात ठीक थी। देवताओंने स्वीकार किया कि मनुष्यके लिए ऐसी वस्तु रची जानी चाहिए जो उसके हाथ लगती रहे किन्तु उसमे कभी विलीन न हो। बहुत सोच-विचारके पश्चात् देवताओंने मानव शरीरकी जिह्वामें जलका और उदरमें अग्निका एक नया पुट दे दिया।

मनुष्यकी रसनामें स्वाद और पेटमें क्षुधाकी दो नयी संवेदनाएँ उत्पन्न हो गयीं; और इस संयोजनाके फलस्वरूप मनुष्यको नित नूतन रुचिमयताका साधन मिल गया और पृथ्वी उसकी असंख्यमुखी संलग्नताओंसे भर गयी।

× × ×

मानव-अतीतके कुछ अन्वेषकोंका कहना है कि स्वाद और क्षुधा वास्तवमें

मनुष्यकी प्रारम्भिक नहीं, बीचकी ही उपलब्धियाँ थीं और इनसे चालित होकर मनुष्यने अटूट रुचिके साथ अगले युगोंमें लक्ष्यकी ओर प्रगति की। किन्तु प्रस्तुत युगमें इन वस्तुओंके सुप्राप्य होते हुए भी वह पुनः अरुचि-ग्रस्त एवम् अगतिशील हो रहा है। कहते हैं कि मनुष्यके इस नये व्यवधानका देवताओंके पास अब कोई उपाय नहीं है—यह मनुष्योंका स्वनिर्मित है और इसके निराकरणका दायित्व स्वयम् उन्हींपर है।

नारी, नाव और सागर

तरुण साधकने जबसे उस रूप-आकर्षणमयी नारीको देखा था, उसका मन उसीके लिए विह्वल था।

गुरुके सम्मुख जाकर उसने अपनी स्थितिका निवेदन करते हुए कहा—

'गुरुदेव, मैं उस सुन्दरीका चिन्तन अपने मनसे निकालनेका प्रयास कर रहा हूँ, किन्तु यह उपक्रम भी बहुत पीड़ाप्रद है। इस पीड़ाको सहने का बल मुझे दें।'

'तुमने उसे कहाँ देखा था?' गुरुने पूछा।

'सागरमें। एकाकी, नौकापर।'

'तुम उसके चिन्तनको मनसे निकाल दोगे तो क्या होगा?'

'मैं उससे मुक्त हो जाऊँगा।'

'और यदि उसका चिन्तन करते रहोगे तो?'

शिष्य इसका उत्तर न खोज पाया।

'तो केवल यही होगा कि तुम उसे प्राप्त कर लोगे।' गुरुने सहज भावसे समाधान किया।

'प्राप्त कर लूँगा?' युवकने सुखद आश्चर्यसे चकित होकर कहा—'उसे प्राप्त कर लेनेमे क्या मेरा कोई अहित न होगा?'

'निस्सन्देह तुम उसे प्राप्त कर लोगे, सागरमें, उसी जल-भागमें। वहाँ केवल तुम होगे और वह सुन्दरी, वह नौका भी नहीं होगी।'

'यह भयावह है गुरुदेव! मैं देख रहा हूँ। मुझे उसके चिन्तनसे मुक्त होनेका ही प्रयत्न करना चाहिए।'

'तुम कर सकते हो। किन्तु उससे मुक्त होनेपर तुम उसकी सूनी नौकामे होगे और वह नौका जलमें न होकर थलमें होगी।'

'यह तो निश्चित मृत्यु ही होगी, गुरुदेव ! मुझे मार्ग दिखाइए ।' शिष्य पीड़ातुर होकर पुकार उठा ।

गुरु मौन होकर उसे देखते रहे ।

नारी वा नारायण

नगरके समीप वनस्थलीमें कुटिया बनाकर वह साधक रहता था। उसकी साधना अखण्ड चल रही थी।

नगरकी एक समृद्ध तरुणी एक बार उसकी कुटियामें उपस्थित हुई। हाथोमें भोजनका पर्ण-पात्र, आँखोंमें अनुरागमयी श्रद्धा लिये।

साधकने उसकी भेंट स्वीकार की। वह लौट गई।

किन्तु तरुणी अत्यन्त रूपवती थी। साधकका मन उसमे अटक गया था। आश्रम छोड़ उसने नगरकी राह ली और उस सुन्दरीको खोज लिया। उससे उसने जो चाहा वह सभी उसे मिल गया।

साधक अब सुन्दरीके प्रेम-पाशमे था। दिन वह अपनी वन्य कुटियामें जैसे-तैसे काटता और रात्रि अपनी प्रियाके साथ प्रेम-क्रीड़ा-रत उसके नगरावासमें।

एक दिन वह अपनी कुटियामें अन्यमनस्क बैठा था कि महागुरु नारायण स्वामी उसी ओर आ निकले।

उन्हे देख साधककी चेतनामें पूर्व साधन-संस्कारोंके साथ गहरी आत्मग्लानिका उदय हुआ। कुटी-द्वारसे उठकर वह उनकी ओर बढ़ा।

महागुरु उसे अपनी ओर आता देख रुके और लौट पड़े।

अपने पतनके प्रति आत्म-ग्लानि और गुरुके प्रति श्रद्धासे आतुर वह रोता-बिलखता उनके पीछे लगा। साधककी गतिके साथ गुरुकी धावनगति भी तीव्र हुई। अब वह पूरे वेगके साथ गुरुके पीछे दौड़ रहा था।

सामने नदी थी। गुरु उसीमे कूदकर गहरे जलमें जा पहुँचे।

साधकका मार्ग रुक गया। तटपरसे ही विलख कर उसने पुकारा—'गुरुदेव!'

गुरु परम सिद्ध थे। जलके ऊपर सिद्धासनमे अवस्थित होकर उन्होंने कहा—

'वत्स, जिसके पीछे भागकर तू कुछ पाना चाहता है, वह चाहे नारी हो या नारायण बन्धनके अतिरिक्त तुझे और कुछ नही दे सकता। तेरे द्वारपर आई नारी मुक्त रहती तो वह तेरे लिए नारायणका प्रसाद थी, और द्वारपर आया नारायण यदि तेरे हाथ आ जाता तो वह नारीके वमन से अधिक कुछ न रहता। तेरे स्पर्शका बचाव मैंने तेरे हितके लिए ही किया है।'

इतना कह कर गुरु जलके गर्भमें अदृश्य हो गये।

आश्रयका मार्ग

सुन्दरीने वैराग्य लिया। प्रेमियोंकी भीड़ पीछे चली। भिक्षुणी वेशमें सुन्दरीने मन्दिरमे प्रवेश किया। प्रेमी-समूह बाहर रह गया।

भिक्षुणीने मन्त्र-सिद्धिके लिए अनुष्ठान किया। किन्तु देवताने सिद्धि की सूचना न दी। भिक्षुणीने वहीं रखा रजत-दण्ड उठा कर मूर्तिके शिर पर प्रहार किया। यह वैधानिक था। देवतामें चेतना जागो।

'क्या कहना है तुम्हें, पुत्री ?'

'मेरे अनुष्ठानकी सिद्धि क्यों नहीं हुई भगवन् ?'

'तुमने मन्दिरमें अकेले प्रवेश नहीं किया।'

'मैं तो सर्वथा अकेली आयी हूँ।'

सहसा घण्टेका गम्भीर घोष हुआ। भिक्षुणीकी सूक्ष्म आकाशीय दृष्टि खुली। उसने देखा—दाहिने उस व्यक्तिकी धूमिल आकृति है जिसके बर्बर प्रेमाक्रमणपर उसे घृणा आयी थी, बाँयें उसकी है जिसके प्रति वह आकृष्ट थी और असफल रही।

'और भी देखो !' घण्टेका फिर घोष हुआ और भिक्षुणीने देखा—सारा स्थान उसके सहस्रों प्रेमियोंकी छायाकृतियोंसे भरा है।

कातर हो पुकारा उसने, 'प्रभु, अपने आश्रयमें आनेका मार्ग दो मुझे !'

और देवताने द्वारकी ओर संकेत करते हुए कहा—'पहिले अपने इन प्रेमियोंसे समझौता करो पुत्री। तभी तुम एकान्त रूपसे यहाँ प्रवेश कर सकोगी।'

नया लक्षण

किसी नगरमें एक परम तेजस्वी साधु आया। उसके तेज, पाण्डित्य और चुम्बकीय आकर्षणने सारे नगरका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। बहुत-से लोग उसके भक्त हो गये। उसके व्यक्तित्वसे प्रभावित तो सभी लोग थे, धीरे-धीरे नगरमें चर्चा फैल गई कि वह एक जीवन्मुक्त, स्थितप्रज्ञ, परमहंस महात्मा है। अपने प्रवचनोंमें वह इन परम गतियोंको पहुँचे हुए पुरुषोंके लक्षण श्रोताजनोंको बताता था और वे लक्षण बहुत कुछ स्वयं उसपर लागू भी होते थे।

कुछ समय पश्चात् किसी गुप्त विरोधीवर्गके प्रयत्नोंसे उस साधुकी कुछ नैतिक-आचारिक पोलोंका पता चला। ऐसी बातोंमें रुचि रखनेवाले खोज-प्रिय व्यक्तियोंने उन कथित आरोपोंके सम्बन्धमे छानबीन की और उन आरोपोंको किसी सीमातक सच पाया। यह स्पष्ट हो गया कि उस साधुकी कहनी और करनीमे बहुत अन्तर है और उसका बहुत कुछ दिखावा आडम्बरकी भूमिपर स्थित है।

साधुकी इन पोलोंकी चर्चा धीरे-धीरे नगरमें फैल गई और उसके बहुतसे भक्त और प्रशंसक उससे विमुख हो गये। उसकी लौकिक समृद्धिके साथ-साथ मुखका तेज भी धीरे-धीरे बहुत घट गया और उदरपूर्तिके लिए उसे नगरमें भिक्षाकी फेरियाँ लगानेपर उतर आना पड़ा।

साधुका मान दिनोंदिन नगरमे गिरता गया और यह नौबत आ गई कि उसे भिक्षा-द्वारा भर पेट अन्न प्राप्त होना कठिन हो गया। अब उसने छोटी-छोटी मज़दूरियाँ और टहलके काम करके अपना पेट भरना प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे उसकी स्थितप्रज्ञता और जीवन्मुक्तताका उपहास करना भी नगरवासी भूल गये और वह नगरका एक उपेक्षित, निम्नतम कोटिका नागरिक बनकर रह गया।

आवश्यक आहार और शीतोष्णसे बचावके अभावमें वह दुर्बल होकर रोगग्रस्त हो गया। अब वह अपनी टूटी-सी कुटियामे जा पड़ा।

वह अपने चरित्रसे कैसा भी था, पर नगरमे दया और धर्मका अभाव नहीं था; कुछ दयालु-जन उसकी कुटियामें ही उसके भोजनके लिए रोटी-पानी और विशेष आवश्यक होनेपर ओषधि भी दे आने लगे।

इसी समय नगरका वार्षिक मिलन-पर्व आ गया—हो सकता है वह होली जैसा ही कोई त्यौहार हो। यथावसर सारा नगर एक बड़ी सभामे एकत्र हुआ। सभाके मंचपर अनायास ही उपस्थित जनोंने उसी साधुको मंथर गतिसे आते देखा। और मंचपरसे उसका सु-पूर्व परिचित, सुदृढ़, गम्भीर स्वर लोगोंने सुना—

'मेरे स्वजनो! स्थितप्रज्ञ और जीवन्मुक्त पुरुषके बहुतसे लक्षण मैंने आप लोगोंको बहुत दिन पहले बताये थे, किन्तु उसके लक्षणोंमेसे एक, जो मैंने आपको अभीतक नहीं बताया था, यह भी है कि आप वैसे पुरुषके सम्बन्धमें अपनी सुनी-सीखी धारणाओंकी कसौटीपर उसे कभी भी स्थायी रूपसे परख नहीं सकते, क्योंकि वैसे पुरुषका मापदंड आपकी मानसिक धारणाओंकी सीमामे नहीं, उसके बहुत बाहरकी ही वस्तु है। आपके नगरमे मेरा कार्य आजसे समाप्त होता है और आपको अपना यह अन्तिम संदेश देकर मैं दूसरे नगरको इसी समय प्रस्थान करता हूँ।'

और लोगोंने देखा, उसका कृशकाय मुख उसकी बहुत पहलेकी-सी अदम्य आभासे दमक रहा था, मंचसे उतरते समय उसकी चालमें एक परम समर्थ सम्राट्की-सी चेष्टा थी और उसके पग नगरकी पश्चिमी सीमापर फैली पर्वत-मालाकी ओर जिस द्रुतगतिसे बढ़ रहे थे वह पहले कभी भी किसी पाँव-पयादे मनुष्यमें नहीं देखी गई थी।

घावके नीचे

देवताओं और असुरोंका संग्राम चल रहा था ।

असुरोंके गुरु शुक्राचार्यके पास वह ओषधि थी जिससे वे अपने दलके योद्धाओंके घाव रातभरमे अच्छे कर लेते थे ।

अन्तःस्रवा असुर दलका एक प्रमुख योद्धा था । देव-दलपर सबसे अधिक मार उसीकी पड़ती थी, उसीका आतंक सबसे बड़ा था और वही प्रति साँझ सबसे अधिक व्रण अपने शरीरपर लिये युद्ध-स्थलसे लौटता था । शुक्राचार्यका सबसे बड़ा स्नेह-भाजन भी वही बन गया था और प्रति भोर युद्ध-स्थलपर जाते समय उससे अधिक निर्व्रण एवं समर्थ दूसरा कोई योद्धा नहीं होता था ।

एक साँझ युद्ध-स्थलसे लौटकर अन्तःस्रवा गुरुकी व्रणोपचारशालामें नहीं पहुँचा । गुरुके पास जानेका साथियोंका आग्रह भी उसने अस्वीकृत कर दिया ।

अगले प्रातः शुक्राचार्य स्वयं अन्तःस्रवाके विश्राम-कक्षमें आये । उसके खुले व्रण फूल रहे थे और रक्त-स्रावसे उसकी शय्या स्नात थी ।

शुक्राचार्य बहुत प्रसन्न हुए । अन्तःस्रवाके घावोंको उन्होंने पैनी अस्थि-शलाकाओंसे कुरेदा और उन व्रणोंके नीचे जीवनामृतकी कुछ बूँदें उन्हे मिल गईं ।

पिछली साँझतक शुक्राचार्यके पास केवल आहतोंके व्रणोपचारकी ही ओषधि थी किन्तु अब मृत सैनिकोंको भी पुनर्जीवित करनेका संजीवनामृत उनके हाथ लग गया । उस रातसे युद्धमें मरे हुए असुरोंको पुनर्जीवित

करनेका क्रम भी असुर-गुरुने प्रारम्भ कर दिया। उसकी कथा पुराण-विदित हैं।

× × ×

आजकी भोर अपने एक अनुपचारित व्रणके नीचे मुझे भी उसी अमृतका एक कण मिला है और तभी मेरे परम कृपालु महोपचारकने इतिहास-पुराणकी यह अबतक अलिखित, अति गुह्य किन्तु चिर सत्य कथा सुनायी है। कौन जाने जीवनमें घटित प्रत्येक व्रणका अभिप्राय ही यह हो कि बाह्य ओषधि द्वारा उसका उपचार करनेसे पहले उसके नीचे छलके परम जीवन-प्रद अमृत-बिन्दुको खोज लिया जाय।

सात अरबका बिल

एक व्यापारीके दो लड़के थे। बड़ा लड़का व्यवसाय कुशल, परिश्रमी और बहुत ही साफ़ लेन-देन रखने वाला था; व्यापारमें न्याय और ईमानदारीका निर्वाह उसकी सबसे बड़ी विशेषता थी। लेकिन छोटा लड़का आलसी और निकम्मा था। उसके पास केवल एक गुण था, संगीत और कण्ठ-स्वरका।

पिताकी मृत्युके बाद बड़े लड़केने सारा कारबार सम्हाल लिया। पिताके समयमें जो थोड़ी-बहुत व्यापारिक अनीति चलती थी उसे उसने एकदम बन्द कर दिया। अपने व्यापारियोंसे पिता-द्वारा लिये गुप्त लाभका धन उसने उन्हें लौटा दिया और जीवित तथा मरे हुए लेनदारोंके अज्ञात अथवा छिपाये हुए ऋण भी उन्हें या उनकी सन्तानोंको चुका दिये। ऐसा करनेके लिए उसे पिताके चलाये हुए दान और परोपकारके खाते भी बन्द कर देने पड़े। वास्तवमें वह अत्यन्त शुद्ध एवं आत्म-निर्भर चरित्रका व्यक्ति था; किसीका ऋणी या अनुगृहीत होना उसे स्वीकार नहीं था और याचक तथा उपकृत प्रकारके मनुष्योंको वह नीची दृष्टिसे देखता था। अपनी इस प्रवृत्तिके कारण वह सामाजिक संसर्गसे बहुत कुछ अलग पड़ गया था।

उधर उसके छोटे भाईका हाल बिलकुल विपरीत था। उसकी संगीत-कलाके प्रशंसकोंका एक वर्ग उसे घेरे रहता था। वह बहुतोंका ऋणी हो गया था और उस ऋणको उसके बड़े भाईने चुकाया था। बड़े भाईके आदेशपर लोगोंने उसे ऋण देना बन्द कर दिया था और तबसे वह अपने घरकी अवहेलना कर मित्रों और प्रशंसकोंकी रोटियोंपर ही पलता था। छोटे भाईकी इस प्रवृत्तिपर बड़ेको बड़ा क्षोभ था, किन्तु वह उसे सुधारनेमें असफल हो चुका था।

संयोगवश इस व्यापारीको यात्रा करते समय किसी दुर्घटनासे गहरी चोट आ गई। वह मूर्च्छित, चिन्ताजनक दशामें घर लाया गया।

ओषधि-उपचारसे वह होशमें आया। उसे अनुमान हो गया कि वह उसके जीवनकी अन्तिम संध्या है। उसने अपने बड़े मुनीमको आज्ञा दी की लेनदारोंके सभी बिल तुरन्त ही अदा करनेके लिए उसके सामने प्रस्तुत किये जायँ।

सभी बिलोंकी तुरन्त अदायगीकी आज्ञापर उसने हस्ताक्षर कर दिये।

धीरे-धीरे उसकी चेतना जागृतावस्थासे लुप्त हो चली। जीवन और मृत्युके बीचकी चेतनामें पहुँचकर उसने देखा, दो देवदूत हाथमें बिलका एक-एक परचा लिये उसके सम्मुख खड़े थे।

उसके संकेतपर पहले देवदूतने आगे बढ़कर अपना बिल प्रस्तुत किया।

अपने पिताके चलाये दान और परोपकारके जिस खातेको उसने बन्द कर दिया था, उसके लिए वह अबतक बारह लाख रुपयेका ऋणी हो गया था। वह दानका खाता वास्तवमें अधिकांशतः पुराने, पूर्वजन्मके ऋणोंकी अदायगी और स्वल्पांशतः आगेके लिए सुरक्षित बचतका ही खाता था। व्यवसायीको ज्ञात था कि अब उसके अवशिष्ट कोष और सम्पत्तिका मूल्य बारह-चौदह लाखसे अधिक नहीं है, फिर भी इस बारह लाख रुपये के बिलकी अदायगीकी स्वीकृति उसने लिख दी।

दूसरा बिल-वाहक देवदूत अब उसके सामने आया।

यह दूसरा बिल सात अरब रुपयोंका था—उस शरीरका मूल्य, जिसे उसने जन्मसे लेकर अबतक धारण किया था।

इस बिलकी अदायगीका उसके पास कोई साधन नहीं था!

× × ×

कहते हैं कि संसारका सबसे अधिक ऋणी वह व्यवसायी अभी तक भू और स्वर्गके मध्यवर्ती अन्तरिक्षमें अनशन-पूर्वक निवास कर रहा है।

अपने छोटे भाई द्वारा—क्योंकि उसका अपना कोई पुत्र नहीं है—श्राद्ध-तर्पणका अनुग्रह स्वीकार करनेपर ही वह मर्त्य-जीवनकी सीमासे मुक्त हो सकता है; और स्वर्गिक महाजनोंका उदार, निर्मूल्य निमंत्रण स्वीकार करके ही स्वर्गमें प्रवेश पा सकता है। किन्तु इन दो-मे-से किसीके लिए भी वह तैयार नहीं है। मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि ग्रहों और अनुग्रहोंके इस ब्रह्माण्डमें अनुग्रह और ऋणोंको न माननेवाले अकृतज्ञ महाऋणी व्यक्तिके लिए भू और स्वर्गमें स्थान कहाँ मिल सकता है !

पति-पत्नी

राजपुरोहितोंने राजकुमारका विवाह विधिवत् सम्पन्न किया। काम-से कमनीय युवराज और रति-सी रूपवती युवराज्ञीकी राज-महिषियोंने आरती उतारी।

राजकुल क्या प्रजाजन, सभीका निर्विवाद मत था कि ऐसी अनिद्य जोड़ी युगानुयुगमें दूसरी नहीं देखी गई थी।

लौकिक रीत्याचारके अन्तमें नव-दम्पतिको राजपुरोहितोंने कुल-देवताके देवालयमें आशीषके लिए प्रस्तुत किया।

कुल-देव अपने आसनपर प्रकट हो गये। नव-दम्पतिपर उनकी दृष्टि पड़ी। पट-चीर-ग्रन्थिसे गुम्फित वर-वधू उनके सम्मुख नत-मस्तक उपस्थित थे।

'इस दम्पतिको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ' कुल-देवता ने कहा—'किन्तु इनके इस पट-चीर-बन्धनका अभिप्राय क्या है ?'

प्रश्न कुल-पुरोहितोंको लक्ष्य कर किया गया था।

'यह शास्त्रीय विधानकी एक नवीन संयोजना है कुलदेव। इसका संकेत है कि ये दोनों अब दो देह होते हुए भी एक-प्राण है, एककी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ ही अब दूसरेकी भी इच्छा-आकांक्षा है।'

'ऐसा है तब तो इनके पास एक-दूसरेको देनेके लिए कुछ भी शेष नहीं रहेगा। यह वास्तवमें दो देहोंके सचल रहते भी उनमेंसे एक प्राणकी मृत्यु होगी। इनके सुख और समस्त मानवीय सम्पर्कोंकी समृद्धिके लिए मेरा आशीष यही है कि यह बन्धन कभी न जुड़े।'

कहते हुए कुल-देवताने दम्पतिके ग्रन्थि-बन्धनपर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली और दोनोंके वस्त्र एक दूसरेसे मुक्त होकर अलग-अलग लटकने लगे।

प्यारकी भूमि

मेरी पत्नीने एक रात स्वप्नमें देखा कि मेरा किसी अन्य स्त्रीसे प्रेम हो गया है ।

सुबह जागते ही उसने मुझे खार-खाई आँखोंसे देखा और अपने स्वप्नकी चर्चा करते हुए कहा कि उसके जीवनमे सचमुच कुछ भयंकर होने वाला है ।

दिन भर उसका मन मेरे प्रति रोष और आवेशसे भरा रहा और उसने मुझसे कोई बात न की ।

इस परिस्थितिका मेरे पास इसके अतिरिक्त और कोई चारा न था कि उस रात मै भी उसीके टक्करका कोई स्वप्न देखूँ ।

अगली सुबह मैंने उसे बताया कि मैने भी गत रात स्वप्नमें देखा है कि मेरी पत्नीका किसी अन्य पुरुषसे प्रेम हो गया है ।

इस स्वप्न-कथनसे बात दबनेके बदले और भी उग्र हो गई । पत्नीने कहा—'तुम अपना पाप छिपानेके लिए उलटा मुझीपर लांछन लगा रहे हो' और फफक-फफक कर रो पड़ी । उस दिन परिस्थिति सचमुच बहुत ही गम्भीर हो गई ।

बड़ी कठिनाईसे समझा-बुझाकर मैने सारा मामला एक मित्रके सामने रखनेके लिए उसे राजी कर लिया ।

यह मित्र मेरी पत्नीके भी विशेष आदरणीय थे । उन्हें स्वप्न-प्रदर्शन-की विद्या आती थी । उन्होंने मेरी पत्नीको सान्त्वना दी कि सब मामला शीघ्र ही ठीक हो जायगा ।

अगली रात पत्नीने एक और स्वप्न देखा । वह चुपचाप उठी और घरके काममे लग गई । मित्रके गुप्त आदेशानुसार मैं उस दिन दोपहर बीते तक खाटपर पड़ा करवटें बदलता रहा ।

दोपहर बीते पत्नीने मेरे पलंगपर आकर बड़े प्यार-भरे स्वरमें कहा—'मैं जानती हूँ कि तुम्हारा मन किसी सुन्दरीमें अटक गया है। दुखी न हो, तुम्हारे मिलनमे मैं कोई बाधा न डालूँगी। तुम्हे सुखी देखकर ही मेरा भी सुख बढ़ेगा' उसका स्वर और भी तरल हो गया। वह कहती गई 'इस रात मैने एक और बड़ा अनहोना सपना देखा है। वे आँखें मेरी आँखोसे निकल ही नही रही है। सोच रही हूँ, वह कौन था और उसकी आँखोंका मतलब क्या था।' कहते-कहते उसने मेरे वक्षपर अपना सिर डाल दिया और उसकी आँखोंसे दो बूँद मेरे कन्धेपर टपक पड़े।

और उस क्षण अनायास ही, सम्भवतः पहली बार, मेरा-उसका गहरा प्यार हो गया।

सिद्धिके परे

महाराजा गोत्राभुकी घोषणा भूतलके कोने-कोनेमें प्रसारित कर दी गई। उन्हें एक ऐसे समर्थ पात्रकी खोज थी जिसे अपने कोषका समस्त संचित धन दान कर वे आत्म-दीक्षामें प्रविष्ट हो सकें।

बड़े-बड़े ब्राह्मण और परिकराधीश गुरुजन राजकोषके द्वारपर जुड़ आये। दान-लाभके साथ-साथ महाराजको शिष्य बनानेकी कामना भी उनमेंसे कई गुरुजनोंके मनमें थी।

महाराजने सबका स्वागत किया। 'जिसमें मेरे इस सम्पूर्ण कोषकी धन-राशिको वहन करनेका सामर्थ्य हो वह आगे आनेका अनुग्रह करे।' महाराजने हाथ जोड़कर विनती की।

श्रेयार्थी याचकोंके रथ और छकड़े बाहर खड़े थे। किन्तु इतना बड़ा वाहन या वाहन-दल किसीके पास नहीं था जो उस सम्पूर्ण भण्डारको संगृहीत कर सके।

सब मौन थे। उस स्तब्धताको भंग करनेका स्वर किसीके पास नहीं था कि अचानक महायाज्ञिक कामण्डलिकने प्रवेश किया।

'ला राजन्, तेरा दान मुझे स्वीकार है' कहते हुए उन्होंने अपना कमण्डल आगे बढ़ा दिया।

महाराजका मस्तक नत हुआ। देखते-देखते राजकोषकी समस्त रत्न-राशि उस कमण्डलके एक भागमें समा गई। कोष-कक्षोंमें रखी पाट-मञ्जूषादितकका चिह्न वहाँ शेष नहीं रहा।

'तेरे अशेष-दानसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ राजन्! पातालसे लेकर वैकुण्ठ तककी जो भी सम्पदा और आसुरीसे लेकर ब्राह्मणी तक जो भी सिद्धि तू चाहे मैं तुझे देता हूँ।' याज्ञिकने कहा।

'अनुगृहीत हूँ महायाज्ञिक। अवगत हूँ कि अनन्त यज्ञ-यागों-द्वारा आपने त्रैलोक्यकी सिद्धि-सम्पदा अपने कमण्डल-गत कर ली है। किन्तु मैं तो अपने स्वल्पसे भी मुक्ति चाहता था, आपके विपुलकी कामना कैसे करूँ? जो स्खला बड़े सौभाग्यसे आपके हाथों पाई है उसे अब किसी भी वस्तु-भारसे क्षुब्ध नहीं करना चाहता।' महाराजने कहा।

याज्ञिकके हाथ कँपे। कमण्डल छूट कर महाराजके पावोंपर गिर गया। 'इन सिद्धि-सम्पदाओंकी उपलब्धिके साथ-साथ मेरी अतृप्ति ही बढ़ी है राजन्! अपनी स्खलाकी शरण मुझे भी दो।' कहते-कहते महायाज्ञिकका शिर भी महाराजके चरणोंपर लुण्ठित हो गया।

कहते हैं कि महर्षि गोत्राभु और उनके पट्ट शिष्य कामण्डलिक अणुव्रतकी कथा किसी भावी पुराणके लिए सुरक्षित है।

परिधि-हीन

उस भोर महलोंमें खलबली मच गई। अपने शयन-कक्षमें सोती हुई राजकुमारी रातोंरात अदृश्य हो गई थी।

राज-ज्योतिषीको खोजकी आज्ञा हुई। अपने पत्रोंमें शोध कर वह महाराजके एकान्त कक्षमे उपस्थित हुआ। अपने सिरकी भिक्षा माँगकर उसने निवेदन किया कि राजकुमारी पड़ोसके राज्यमे अपने प्रेमी, उस राज्यके प्रधान सेनापतिके पुत्रके साथ है।

ज्योतिषीका कथन ठीक निकला। गुप्तचरोंने एक सप्ताहके भीतर राजकुमारीको महाराजके सम्मुख ला उपस्थित किया। महलोंके बाहर वह एक दूसरे भवनमें रखी गई। राजकुलकी निष्कलंक मर्यादाकी दृष्टिमे वह उच्छिष्ट हो चुकी थी।

महाराजने पड़ोसी राजासे माँग की कि वह अपने सेनापतिके पुत्रको अपराधीके रूपमे उन्हे सौप दें। किन्तु उस राजाने यह माँग अस्वीकार कर दी।

अपराधीको दंड देना अनिवार्य था। महाराजने पड़ोसी राज्यपर आक्रमणकी योजना बना ली।

उसी बीच महाराजने एक रात स्वप्न देखा कि उनकी छोटी, परमरूपवती रानी एक परपुरुषके प्रेमपाशमें आबद्ध है। क्रोधके आवेशमें उन्होंने तत्काल अपने खड्गसे उस पुरुष और अपनी नई रानी, दोनोंका वध कर दिया।

जागनेपर महाराजको इस स्वप्नपर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनकी कोई दूसरी नई रानी थी ही नहीं।

स्वप्नकी चर्चा उन्होंने राजज्योतिषीसे की। स्वप्नको अत्यन्त सार्थक बताते हुए ज्योतिषीने विनय की कि जब-तक इस स्वप्नका फल सम्मुख न आ जाय तब-तकके लिए पड़ोसी राज्यपर आक्रमण स्थगित रखा जाय। उसने बताया कि यह स्वप्न एक मासके भीतर फलित हो जाना चाहिए।

महाराजने ज्योतिषीका अनुरोध मान लिया।

कुछ ही दिन पीछे आखेट-यात्राके क्रममें महाराजको एक रात किसी वनके अंचलमें एक तरुण साधु-दम्पतिका अतिथि होना पड़ा। उनके आश्चर्य और मनोद्वेगकी कोई सीमा न रही, जब उन्होंने पहचाना कि अनन्य रूपमें इस साधुकी पत्नीको ही उन्होंने अपनी छोटी रानी तथा इस साधुको ही उसके प्रेमीके रूपमें देखा था और इन्हीं दोनोंका उस स्वप्नमें वध किया था।

देखते ही उस अनिन्द्य रूपवती साधु-पत्नीपर महाराज आसक्त हो गये। वह तरुणी भी उनपर अनायास ही मुग्ध हो गई। महाराज अभी युवा ही थे।

अगले ही दिन महाराज महलोंको लौट आये। उनका मन सुन्दरीके प्रेमबाणसे पूर्णतया बिंध गया था। पर्यंक छोड़ वह तीन दिन तक दरबारमें भी नहीं जा सके।

तीसरे ही दिन वह साधु अपनी पत्नीको लिये राजकक्षमें उपस्थित हुआ। उसने कहा—

'महाराज, प्रेम न उच्छिष्ट होता है न अधिकृत, और न ही वह अनन्यताकी परिधिमें बाँधा जा सकता है। स्वप्नकी मायामें आपने मेरा और मेरी पत्नीका वध किया था, किन्तु जागृतिके प्रकाशमें ऐसा नहीं करेंगे, इसके लिए मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। मेरी पत्नी आपपर अनुरक्त है, उसे अंगीकार करें।

× × ×

महाराजकी चेतनाके साथ-साथ उनके राजकुलकी मर्यादाकी सीमाएँ भी उस दिनसे बहुत विस्तृत हो गईं। दोनों राज्योंके सहस्रों सैनिकोंके रक्तपातकी योजना समाप्त हो गई और राजकुमारीका भी उसके प्रेमीके साथ विवाह कर दिया गया।

मतदान

बात कुल पाँच सहस्र वर्ष पूर्व कलियुगके प्रारम्भ कालकी है। भूलोक-पति भगवान् सनत्कुमारके अधीनस्थ पृथ्वीकी भौतिक और पार-भौतिक शक्ति-सेनाओंके संचालनके लिए प्रधान सेनापतिका चुनाव होना था। पृथ्वी-जीवनके विकासके लिए दैवी और आसुरी दोनों पक्षोंकी प्रवृत्तियोंका प्रभाव समय-समयपर आवश्यक था। विधानके अनुसार सेनापति निर्वाचन-द्वारा ही नियुक्त होता था। देवताओं और असुरोंने अपने-अपने वर्गके एक-एक व्यक्तिको इस निर्वाचनके लिए खड़ा किया।

उस समय जनगणनाके अनुसार मतदाता-सूचीमें असुरोंकी संख्या देवताओंसे अधिक थी। असुरोंका प्रचार और संगठन इतना व्यापक था कि उनमेसे एकका भी मत देव-प्रतिनिधिके पक्षमे जानेकी सम्भावना नहीं थी। प्रत्युत यह भी भय था कि कुछ देवता भी उन्हींके पक्षमें मतदान न कर बैठें। देवताओंकी ओरसे अधिक-से-अधिक यही प्रयत्न हो रहा था कि असुर वर्गके कुछ मतदाता तटस्थ हो जायें।

विधानके अनुसार यह व्यवस्था थी कि प्रत्येक मतदान-पत्रपर मतदाताका नाम भी अंकित हो।

मतदान प्रारम्भ हुआ और समाप्त हो गया।

मतगणनाके लिए पेटियाँ खोली गयीं। अधिकारी प्रेक्षकोंको यह देखकर सबसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि असुर-प्रतिनिधिकी पेटीमे सबसे पहला मत देवगुरु बृहस्पतिका आया था। उसके अतिरिक्त समस्त असुरोंके मत असुर-प्रतिनिधिकी पेटीमें और देवताओंके देव-प्रतिनिधिकी पेटीमे आये थे। असुरों और देवताओंका मतदान पूरा सौ प्रतिशत हुआ था।

असुर वर्गका प्रतिनिधि लगभग पौने तीन अरब मतोंसे विजयी घोषित कर दिया गया।

कहते है, तबसे पृथ्वीकी भौतिक एवं सूक्ष्म शक्तियोंपर आसुरी आधिपत्यका ही प्रभाव है और उस प्रभावने भूतलसे दैवी वर्गकी प्रवृत्तियोंको सर्वथा निष्कासित कर दिया होता यदि उस आधिपत्यके सृजनमे देववर्गका भी एक मत सम्मिलित न होता। देवगुरु बृहस्पतिकी इस दूरदर्शी कूटनीतिक चालके फलस्वरूप ही मनुष्यके मनमे दैवी चेतनाके बीज सुरक्षित बचे हैं और अब द्रुत गतिसे अंकुरित हो रहे है।

तृष्णाका खेल

एक निर्धन किसान एक बार राजाके दरबारमें उपस्थित हुआ। उसके पास केवल एक बीघा खेत था। एक बीघेकी खेतीसे उसका निर्वाह बड़ी तंगीसे होता था। उसकी प्रार्थनापर राजाने उसके खेतसे मिला हुआ एक बीघा खेत उसे और दे दिया। किसानका निर्वाह अब सुगमतापूर्वक होने लगा। साथ ही उसकी समृद्धिकी तृष्णा भी बढ़ गयी।

कुछ वर्ष बाद किसान फिर राजाके दरबारमें उपस्थित हुआ। राजा अपनी दान-प्रवृत्तिके लिए प्रसिद्ध था। उसने अबकी बार बीस बीघा धरती उसे और दे दी, किन्तु यह आदेश साथ लगा दिया कि यदि कोई निर्धन ब्राह्मण पर्वके दिन उससे याचना करे तो एक बीघा खेत या उसके अन्नके दानका संकल्प अवश्य उसके नाम कर दे। यह धरती उसके दो बीघा खेत और गाँवसे दूर थी।

किसान राजासे यह आशातीत इतनी बड़ी भेंट पाकर बहुत प्रसन्न अपने गाँवको लौट आया। वह स्वयं व्रत, पूजा-पाठका बड़ा प्रेमी था और अपने परलोकके कल्याणके लिए ब्राह्मणोंका आशीर्वाद पानेको सदा लालायित रहता था।

पर गाँवके उन बीस बीघोंकी खेतीका काम उसने अपने बेटेको सौंप दिया और गाँवके दो बीघेका काम अपने हाथमें रखा।

पर्वोंके दिन वह व्रत रखता था और देवालयमें जाकर पूजा-पाठ करता था। अगले पर्वके दिन देवालयसे घर लौटते समय एक निर्धन ब्राह्मण उसे मार्गमें मिल गया। किसानने बड़े प्रसन्न भावसे एक बीघा खेत उसे दान कर दिया। ब्राह्मणने भी अपने आशीर्वचनोंसे उसे नहला दिया।

एकके बाद एक पर्व आते गये और याचक ब्राह्मणोंका क्रम भी किसी बार नहीं टूटा। तीन महीनेके भीतर किसानके दस बीघे खेत भेंट हो गये और ब्राह्मणोंके आशीर्वचनोंकी भी एक बड़ी पोट उसके परलोक-सुखके लिए बँध गयी।

इसी बीच उसके पुत्रने सूचना दी कि नीलगायोंने खेतोंमें बड़ा उत्पात मचा रखा है और खेतीको हानि पहुँचा रही हैं। किसानने खेतोंकी रखवालीके लिए एक और व्यक्ति मज़दूरीपर वहाँ लगा दिया।

किसानके दानकी सूचना दूर गाँवोंमें भी पहुँच गयी थी। हर पर्वपर कोई-न-कोई ब्राह्मण किसी-न-किसी गाँवका उसकी राह या द्वारपर आ जाता और एक बीघा खेत पाकर असीसता हुआ लौट जाता।

किसानने अब प्रयत्न करना चाहा कि पर्वके दिन कोई वैसा याचक उसके सामने न पड़े किन्तु यह न हो सका। उसके उन्नीस बीघे निकल गये। फ़सल कटनेके पहले दो पर्व अभी और शेष थे। उसने निश्चय किया कि अगले पर्वपर साँझ तक मन्दिरमें ही आँख मूँदे बैठा रहेगा और सूर्यास्त पीछे, दान-संकल्पकी वेला समाप्त होनेपर ही बाहर निकलेगा, किन्तु उस दिन अचानक तीसरे पहर एक ब्राह्मणने मन्दिर-द्वारपर ही पहुँचकर टेर लगादी। किसानने मन-ही-मन बहुत दुःखी होकर अन्तिम बीसवाँ बीघा भी उसे दान कर दिया। ब्राह्मणने आशीर्वाद दिया, 'जा बेटा, भगवान् तुझे सदा सुखी और निश्चिन्त रखेगा!'

जिस दिन फ़सल कटकर आनी थी, बीसों ब्राह्मण किसानके घर एकत्र थे। किसानका क्षोभ बढ़ा हुआ था। उसकी आँखोंमें वे काँटे-से चुभ रहे थे।

निश्चित समयपर लदे हुए छकड़े खेतोंसे आकर उसके द्वारपर खड़े हो गये। किन्तु उनमें अनाजका एक दाना भी नहीं, सूखे पत्तोंके निचले भागका केवल भूसा ही था। नीलगायोंने एक भी दाना खेतोंमें नहीं छोड़ा था।

किसानकी तृष्णाका खेल पूरा हो गया और हानि कुछ भी नहीं हुई। उसका भाग—निर्वाह-भरका अन्न—उसके दो बीघे खेतमें तैयार था। ब्राह्मणोंको अब उसने अतिकृतज्ञ मनसे उनके दिये हुए आशीर्वादोंके लिए सिर झुकाकर प्रणाम किया।

अमृतत्रयी

अपने असाधारण सामर्थ्य और कौशलसे राजाने देशमें समृद्धि और वैभवकी सरिताएँ बहादीं। धन, धान्य, भवन, वाहन, सुरा, सौन्दर्य और कलाकी विविधतापूर्ण सम्पदाएँ उसके राज्यमें चरम सीमापर पहुँच गयीं।

किन्तु, इन सबके आते-होते भी देशवासियोंके जीवनमें किसी गहरे अभाव और नीरसताकी अनुभूति थी।

इस राजाने वह काम कर लिया था जिसके लिए पीढ़ियोंसे देशके राजा और प्रजा प्रयत्नपूर्वक लालायित थे। युगोंसे भूख और निर्धनतासे संघर्ष करते-करते इसी राजाके राज्यमें पूर्ण सफलता उन्हें मिली थी।

राजा वृद्ध हुआ और उसके राज-भारसे अवकाश ग्रहण करनेका समय आ गया। भरी समृद्धियोंके बीचमें भी जन-जीवनमें कोई गहरा अभाव शेष था और एक नयी नीरसता उसपर छा गयी थी। यह राजाके लिए कठिन चिन्ताकी सामग्री थी। फिर भी राजाने यथासमय अपने पुत्र युवराजके राज्याभिषेकके आदेश प्रस्तुत कर दिये।

युवराजने पितासे प्रार्थना की कि उसे एक वर्षका अवकाश दिया जाये। इतने समयमें वह राजकुलकी परम्परामें अपने कर्तव्य-भागकी खोज कर लेगा।

मन्त्रियोंने युवराजकी माँगका समर्थन किया और युवराज महलोंको छोड़ वनको चला गया।

महलोंमें रहते हुए तरुण युवराजके लिए वैभव और विलासकी कोई भी वस्तु अनुपलब्ध नहीं थी। जिह्वा-भोग और सुरा-सुन्दरियोंके सभी सुख उसे प्रचुर मात्रामें प्राप्त थे।

गहन वनमें पहुँचकर युवराजने संकल्पपूर्वक एकनिष्ठ साधना की। उसकी साधना जगी। साधना-पथमें उसने विशुद्ध भूख, प्यास और कामकी त्रिदेवीका साक्षात्कार किया।

साधना पूर्ण होते ही एक तरुणी एक हाथमें ढाक-पत्रपर गेहूँकी दो रोटियाँ और दूसरेमें एक कटोरा जल लिये उसके सामने प्रकट हुई।

युवराजने रोटियाँ खायीं, जल पिया और फिर उस मुग्ध-नयना, अल्प-वसना अनिन्द्य सुन्दरीको अपने बाहुओंमें समेटकर उसके अधरोंको चूम लिया।

युवराज अपने कर्तव्य-भागकी खोजमें सफल हो गया था। राज-नगरको लौटकर उसने राज्याभिषेक ग्रहण किया। राज्यासनपर बैठते ही उसने अपने राज-कालीन लक्ष्यकी घोषणा की—

‘धन-धान्य और वैभव-विलासकी विविधरूपा एवं कृत्रिमतामयी बाढ़ोंमें प्रजाजनकी विशुद्ध भूख, प्यास और कामकी प्रवृत्तियाँ डूब गयी हैं। विविध व्यंजनों और अतिमिश्रित पेयोंके बीच शुद्ध अन्न और निर्मल जलका तथा अतिरंजित यौवन-विलासके बीच निर्लिप्त चुम्बनका स्वाद मेरे स्वजन खो चुके हैं। विशुद्ध रोटी, निर्मल जल और निर्लिप्त चुम्बनके स्वाद और साधनकी अमृतत्रयी मुझे अपने सभी प्रजाजनके लिए अपने राज्यकालमें सुलभ करनी है।’ •

× × ×

और इस कथापर मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि नये राजाके नये अनुष्ठानमे सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वह समृद्ध देश ही नहीं, अपितु आजका ‘सभ्य’ कहा जानेवाला सम्पूर्ण मानव-संसार उस अमृतत्रयीसे पहले दोके अतिमिश्रित अतिसंचयोंसे मुक्त होने तथा तीसरेकी समर्थ साधुताको स्वीकार करनेके लिए अभी तैयार नहीं है।

जड़ता, करुणा और बोध

जंगलमें वायु-सेवनके लिए जाकर मैं जहाँ कुछ देर बैठता हूँ, वहाँ एक दिन मैंने एक मरे हुए बैलका ढाँचा पड़ा पाया। गिद्धों और सियारोंने उसका मांस लगभग साफ़ कर दिया था।

'यह कम्बख्त बैल भी मरनेके लिए आया तो यहाँ आया!' मैंने खीझकर कहा और आगे बढ़ गया।

दूसरे दिन मैं फिर उसी ओरसे निकला। हड्डियोंका ढाँचा उस दिन और भी साफ़ किया हुआ वहीं पड़ा था। पास ही मेरी दृष्टि एक गायपर पड़ी। वह वहीं खड़ी अपने बछड़ेको दूध पिला रही थी और बड़े प्यारसे उसे चाट रही थी।

पाससे गुज़रते हुए एक चरवाहेने मुझे बताया कि वह मरा हुआ बैल इसी गायका सबसे पहला बछड़ा था।

मैंने उस बछड़ेकी ओर देखा और फिर उस हड्डीके ढाँचेकी ओर। एक दिन इस मरे हुए बैलको भी इस गायने ऐसे ही प्यार किया होगा! मेरा हृदय एक अज्ञात पूर्ण करुणाकी वेदनासे पिघल उठा। जीवनकी यह गति! जिसका एक दिन ऐसा प्यार-दुलार उसीकी एक दिन ऐसी दशा! करुणा और निराशाके आवेगसे मेरे सामने अँधेरा-सा छा गया। मुझे ध्यान आया, पिछले दिन उस बैलके शवको देखकर मैंने कितनी जड़तापूर्ण बात सोची थी! मैं कलतक कितना जड़हृदय था!

तीसरे दिन भी मैं यहीं पहुँचा। बैलकी हड्डियाँ वहीं पड़ी थीं। पास ही वह गाय खड़ी अपने नये बछड़ेको चाट रही थी। अचानक एक कुत्ता उसके ऊपर भौंकता हुआ झपटा। गाय पहले तो भागी, पर जब उसने देखा कि उसका बछड़ा पीछे ही छूट गया है तो वह मुड़कर खड़ी हो

गयी और कुत्तेको सींगसे उछालकर उसने दूर फेंक दिया। कुत्ता भौंकता हुआ उठकर भागा और कुछ देर बाद हड्डीके उस ढाँचेके पास बैठकर उसकी पसलियाँ चबाने लगा। गाय चुपचाप खड़ी उसे देखती और बीच-बीचमें अपने नये बछड़ेको चाटती रही।

पिछले रात-दिनका चढ़ा हुआ करुणा और निराशाका भार मेरे हृदयसे एक-दम उतर गया। गायकी आँखें मुझसे कह रही थीं—

'किसी रूप या देहके मोहमें न अटको, केवल उसके जीवनको ही प्यार करो! जीवन सदैव एक रूपमें बँधा नहीं रह सकता। जड़ता तो पूरा अन्धापन है ही, मोह-जनित करुणा भी एक परदा है। हड्डीके ढाँचेका कुछ नहीं बिगड़ सकता, क्योंकि वह संवेदना-हीन है, और उसमें बसने वाले बछड़ेका भी कुछ नहीं बिगड़ सकता। देखते नहीं, मेरा बछड़ा अब भी मेरे पास है!'

सुप्त प्रेरक

एक पहाड़ीपर गिट्टियोंकी तुड़ाईका काम लग रहा था।

सैकड़ों मज़दूर प्रतिदिन पहाड़ी चट्टानोंको कुदालोंसे तोड़ते और टूटी गिट्टियोंको डलियोंमें भर-भरकर देसावर भेजनेके लिए छकड़ोंपर उँडेल आते।

एक सुबह एक नया आदमी मज़दूरीके लिए वहाँ पहुँचा। वह अपने गाँवसे रातभरकी मंज़िल पारकर वहाँ पहुँचा था। रातभरकी थकान और नींदके साथ-साथ कई दिनोंके रीते पेटके भी लक्षण उसके शरीरपर स्पष्ट थे। डगमगाते पाँव, कठिनाईसे खुलती आँखें और मुर्झाया स्वर।

'तुम्हें मज़दूरीका काम नहीं दिया जा सकता—तुममें काम करनेका दम नहीं है।' मज़दूरोंको नियुक्त करनेवाले अधिकारीने कहा।

कामका मालिक संयोगवश उस दिन काम देखने वहाँ आया हुआ था और पास ही खड़ा था। उसने सिफ़ारिश कर इसे मज़दूरीपर लगा लिया। कामसे पहले नये मज़दूरको मालिकने कुछ भोजन दिया और तत्पश्चात् उसे भी एक कुदाल और डलिया दे दी गयी।

पहाड़ीपर ऊपरकी ओर एक छोटी चौरस चट्टानपर जाकर उसने दो-चार कुदालें चलायीं और वहीं पड़कर सो गया।

दूसरे मज़दूरोंने उसे देखा। वह पहाड़ीके ऐसे खुले स्थलपर सोया था कि लगभग सभीकी दृष्टि उस तक पहुँचती थी।

'कितना आलसी और नमकहराम है यह मज़दूर! पड़ा सो रहा है और शामको हम सबके साथ बराबरकी मज़दूरी लेने पहुँच जायेगा! छिः ऐसा भी किसीको करना चाहिए!' वे सोचते रहे, कहते रहे और काम करते रहे।

उस शाम सब मजदूरोंको मज़दूरी बँटी और उस सोनेवालेको भी दिनभरके पूरे पैसे दिये गये।

दूसरे मजदूरोंको आश्चर्य हुआ, आपत्ति भी हुई।

'इस आदमीको इसकी ईमानदारीकी मज़दूरी दी गयी है। इसकी ईमानदारीने बड़ा काम किया है।' मालिकने उन्हें बताया।

और इस बातके प्रमाणमें जब हिसाब लगाकर देखा गया तो मिला कि उस दिन सब मज़दूरोंका काम मिलाकर और दिनोंसे सवाया हुआ था।

अन्तिम खोज

एक समूचे बड़े महाद्वीपपर फैला हुआ एक राजाका राज्य बहुत घना बसा हुआ था। उसे अपने देश-वासियोंके लिए नयी भूमि जीतकर उसपर उपनिवेश बनानेकी आवश्यकता हुई। राजाके आदेशसे अन्वेषकोंकी एक टोली समुद्री नौकाएँ लेकर नये द्वीपकी खोजमे निकल पड़ी।

बहुत दिनोंकी सुख-दुःख-पूर्ण यात्राके बाद अन्तमें यह अन्वेषक टोली एक द्वीपके तटपर पहुँच गयी। द्वीपके निवासियोंने इन लोगोंका कोई विरोध न करके एक प्रकारसे इनका स्वागत ही किया। उन्होंने समुद्र-तटपर ही इनके ठहरनेकी व्यवस्था करदी और पूरे द्वीपका भ्रमण करने और द्वीप-वासियोंसे मिलने-जुलनेकी सुविधाएँ भी उन्हें दे दीं।

इन द्वीप-वासियोंका कोई राजा न था और न इनकी बस्तियोंमें कोई विशेष शासन-व्यवस्था ही थी। कुछ दिनोंके सम्पर्कसे इस द्वीपके निवासी तैयार हो गये कि अभ्यागतोंके महाद्वीपका राजा उनके द्वीपको अपने राज्यमें सम्मिलित करले। इस सुन्दर वनों, पर्वतों, जलाशयों और समतल मैदानोंसे समृद्ध द्वीपका क्षेत्रफल महाद्वीपके चतुर्थांशके बराबर, तथा जन-संख्या बहुत बिरली, सहस्रांशसे भी कुछ कम थी। ऐसा सुन्दर द्वीप और उसके ऐसे सरल निवासी पाकर अन्वेषकोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस देश और निवासियोंके सम्बन्धमें अधिकसे-अधिक बातोंकी जानकारी प्राप्त करली और अपने महाद्वीपको लौट आये।

बड़े राजाका शासन स्वीकार करनेमें इस द्वीपके निवासियोंकी केवल एक शर्त थी : फलों-मेवोंके जिन बगीचोंसे वे लोग अपना आहार प्राप्त करते थे उनपर उनका ही अधिकार बना रहेगा। महाद्वीप-वासियोंके लिए इस छोटी-सी शर्तको स्वीकार करना कोई बड़ी बात न थी। नये उपनिवेश

बनानेपर वे इस द्वीपमें फलोंके नये बगीचे लगा सकते थे; और उनका मुख्य आहार तो अन्न था, जिसकी खेती करना उन्हें अच्छी तरह आता था।

राजाने अपने एक मन्त्रीकी अध्यक्षतामें उसी अन्वेषक टोलीको पुनः अन्तिम वार्ता और आवश्यक व्यवस्थाके लिए उस द्वीपमें जानेका आदेश दिया। किन्तु उन अन्वेषकोंमें से एकने वहाँ दोबारा जानेसे इनकार करते हुए अपना मत दिया कि उस द्वीपको इस राज्यमें सम्मिलित करना सर्वथा निरर्थक है। इस व्यक्तिने पहले भी इस द्वीपके सम्बन्धमें की गयी खोजोंमें तनिक भी भाग नहीं लिया था। राजाने इस व्यक्तिके कथनपर कोई ध्यान नहीं दिया। उसकी निष्क्रियताकी बात पहले ही राजाके कानोंमें पहुँच चुकी थी और अब उसके इस आग्रहपर ध्यान देनेका अर्थ यही हो सकता था कि उसे उसकी प्रतिगामिता और विरोधात्मक प्रचारके लिए दण्डित किया जाय।

दूसरी बार यह टोली उस द्वीपमें पहुँची। सब बातें तय करके वहाँ उपनिवेश बसानेकी तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयीं। आवश्यक अन्नों और साम-ग्रियोंसे भरी नौकाएँ उस द्वीपको जाने लगीं। नयी बस्तियाँ बसने लगीं और मैदानोंमें अन्नकी खेती करनेके लिए खेत तैयार किये जाने लगे। उतने समय तकके लिए अन्न नये प्रवासियोंकी आवश्यकता-भरको महाद्वीपसे ले जाया गया था। वर्षा हुई और खेतोंमें आवश्यक अन्न बो दिये गये।

किन्तु इस सब श्रमका अन्तिम फल देखनेमें अधिक विलम्ब न लगा। उस द्वीपकी धरतीपर अन्न-बीजका एक भी अंकुर नहीं उगा। उस द्वीपकी सम्पूर्ण धरती अन्नोत्पादनके लिए थी ही ऐसी !

नये प्रवासियोंको अपने श्रम, सम्पत्ति और आशाओंका बहुत-कुछ खोकर पुनः अपने महाद्वीपको लौटना ही पड़ा !

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि उस विरोधी अन्वेषकने असंख्य दूसरी जानकारियोंका संग्रह करनेसे पूर्व उस धरतीके एक कोनेमे बैठकर इस परम

प्राथमिक ज्ञातव्यका पता लगा लिया था। कथागुरुका यह भी संकेत है कि आधुनिक युगके मनुष्योंके अधिकांश अति-विस्तृत अन्वेषणोंकी अन्तिम विफलता अथवा निरर्थकताका रहस्य यही है कि इस अति-कथित कथाके तथ्यपर अनुसन्धान करनेकी किसी भी राजकीय अन्वेषक-वर्गने अभी तक आवश्यकता नहीं समझी।

जो नहीं जानता

किसी समय एक पूरा महानगर एक ही धर्म-गुरुका शिष्य था। यथा-समय शरीरके वृद्ध हो जानेपर धर्म-गुरुने समाधि लेकर अपना देहान्त कर लिया। उनके रिक्त धर्मासनपर दो शिष्योंने अपने उत्तराधिकारका दावा किया। फलस्वरूप नागरिक-जन दो दलोंमें विभक्त हो गये और नगरमें दो धर्म-मठ स्थापित हो गये।

उस महानगरकी गुरु-परम्पराके अनुसार यह निश्चित था कि एक गुरुका एक ही सच्चा उत्तराधिकारी हो सकता है, अधिक नहीं। दोनों मठोंके अनुयायी अपने गुरुको ही सच्चा और दूसरेको झूठा मानते थे। स्वभावतया, दोनों दलोंका प्रयत्न था कि दूसरे दलके लोग भी अपने नये गुरुको छोड़कर इसी दलमें आ मिलें। दोनों दलोंके व्यक्ति विपरीत दलके अनुयायियोंमें जाकर प्रकट और अप्रकट रीतिने अपने मठके समर्थनमे प्रचार करते थे और कुछ लोगोंको अपने पक्षमें लानेमें सफल भी होते थे। उनका यह व्यापार स्वाभाविक ही नहीं, अपनी मान्यताके अनुसार उचित और आवश्यक भी था।

एक बार एक मठके गुरुने अपने कुछ शिष्योंको यह कार्य सौंपा कि वे दूसरे मठमें जाकर उसके गुरुकी उन असंगतियोंका पता लगायें, जो वास्तविक धार्मिकता और आध्यात्मिकताके प्रतिकूल हैं। अभिप्राय यह था कि उन असंगतियोंका पता लग जानेपर उनकी चर्चा सारे महानगरमें प्रसारित करके सचाईसे लोगोंको अवगत कर दिया जाय और विवेकका आश्रय लेकर लोग सच्चे पक्षमें आ मिलें।

इस गुरुके चौदह शिष्य विपरीत मठमें गये और उन्होंने गुप्त और प्रकट रूपसे, एक-साथ और अलग-अलग भी, उस गुरु तथा मठकी कसरों

और असंगतियोंका अध्ययन किया। उनका एक विस्तृत लेखा-जोखा तैयार करके वे अपने मठको लौट आये।

उनमें से तेरह व्यक्तियोंने अपनी-अपनी खोजका विवरण अपने गुरुके दरबारमें प्रस्तुत करते हुए बताया कि उन्होंने ये-ये बातें धर्म और आध्यात्मिकताके प्रतिकूल उस मठमें देखी है, किन्तु चौदहवें व्यक्तिने अपनी अल्पज्ञता और विवशता प्रकट करते हुए कहा :

'महाराज, मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पाया कि उस मठकी कौन-सी बातें धर्म और आध्यात्मिकताके प्रतिकूल हैं। उस मठके सम्बन्धमें बहुत-कुछ देख आनेपर भी मैं कुछ नहीं जानता।'

गुरुने तुरन्त ही अपने धर्मासनसे उतरकर इस चौदहवें व्यक्तिको गलेसे लगा लिया और शिष्य-वर्गको सम्बोधित करते हुए कहा :

'बहुत-कुछ देखते हुए भी जो निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं जानता वही वास्तविक रूपमें कुछ, और फिर बहुत-कुछ जाननेका अधिकारी है। अपने इसी एक शिष्यसे मुझे आशाएँ हैं कि यह झूठे पक्षकी वास्तविक असंगतियोंका पता लगाकर नगर-जनोंको उनसे अवगत करेगा और इसके ही प्रयत्नोंके फलस्वरूप एक दिन सम्पूर्ण नगर फिर एक होकर सत्य पक्षका अनुयायी बनेगा।'

आदमीका नुस्खा

प्राचीन युगमें एक बार देवों और असुरोंका संग्राम बढ़ते-बढ़ते भूलोक तक आ पहुँचा। देवताओंकी प्रकृति और स्वभावके अनुकूल होनेके कारण पृथ्वीके मनुष्य तुरन्त ही देव-पक्षमे सम्मिलित हो गये और पशुओंका वर्ग ही पृथ्वीपर ऐसा शेष रह गया जिसे असुर-जनोंको अपने दलमें लेनेके लिए विवश होना पड़ा। मनुष्य शरीर-बलमे पशुओंसे हीन होते हुए भी अपनी बुद्धि एवं मानवत्वके कारण अधिक समर्थ थे। इस प्रकार भूलोक के बँटवारेमें असुर-जन देवताओंकी तुलनामें घाटेमे ही रहे। इस बँटवारेके पश्चात् देवासुर-संग्राममें असुरोंकी विजयके अवसर बहुत घटकर पराजयके अवसर बहुत बढ़ गये।

असुरोंने मनुष्योंको देवताओंके वर्गसे तोड़कर अपने वर्गमे मिलानेके लिए भाँति-भाँतिके प्रलोभन उन्हें दिये, किन्तु उन्हे इसमें तनिक भी सफलता न मिली। बार-बारकी पराजयसे जब असुरोके हाथ-पाँव फूलने लगे तब अन्तमें उन्होंने अपने धर्म-गुरु शुक्राचार्यकी शरण ली।

उनकी संकट-कथा सुनकर शुक्राचार्यने ध्यानके निमित्त अपनी एक आँख बन्द की। कहते हैं कि दूसरी आँख बन्द करनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था! और तीन पलके भीतर ही ध्यानसे निवृत्त होकर उन्होंने आँख खोल दी। असुर-जनोंको सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा—

'मनुष्य-जन आपके पक्षमें सम्मिलित होनेको उद्यत नहीं है तो न होने दीजिए। मनुष्योंके निर्माणका योग (नुस्खा) मैंने अभी-अभी खोज लिया है और आपके दलमें सम्मिलित पशुओंमे से ही जितनेकी आपकी आवश्यकता होगी उतने मनुष्य मैं बना दूँगा।'

और सचमुच स्वल्प कालके भीतर ही शुक्राचार्यने बारह अरब पशुओं-

मेंसे छाँटकर सात अरब मनुष्य रूपमे परिवर्तित करके, सात अरब नवनिर्मित मानवोंको असुरोके पक्षमे खड़ा कर दिया; जब कि देवताओंके पक्ष में कुल वास्तविक मानवोंकी संख्या केवल तीन अरब ही थी।

इसके पश्चात् असुरोंकी पहली बड़ी विजयके उपलक्ष्यमे जो बड़ा उत्सव-समारोह हुआ उसमे शुक्राचार्यने पशुओको मनुष्योमे बदलनेका वह आश्चर्यजनक नुस्खा भी सबके सामने प्रकट कर दिया ! यह चतुःसूत्री नुस्खा बहुत सरल और इस प्रकार था .

प्रथम सूत्र—पशुका शारीरिक आकार मनुष्यके आकारमे बदलो। (आकार बदलनेकी यह कला छोटेसे-छोटे असुरको भी आती थी)

द्वितीय सूत्र—पशु-हृदयके सातवें (नीचेकी ओरसे चलकर) पटल पर जो भयकी प्रवृत्ति है उसे सबसे भीतरी प्रथम पटलपर ले जाओ।

तृतीय सूत्र—पशु-हृदयके प्रथम (सबसे निचले) पटलपर जो छलकौशलका पुट है उसे ऊपरके सातवें पटलपर ले आओ।

चतुर्थ सूत्र—पशु-हृदयके छठे (नीचेकी ओरसे गिनकर ही) पटलपर लोभ या आशाकी जो धारणा है उसे द्वितीय पटलपर ले आओ।

और निस्सन्देह इस नुस्खेसे पशुका जो मनुष्य बना वह अत्यन्त शिष्ट, मृदुभाषी, दूसरेका गला चुपचाप काटनेमें निपुण और आजकी सभ्यता के अनुरूप एक पूर्ण सभ्य मनुष्य था।

× × ×

इस कथाको कोई आजकी मनुष्य जातिका अनादर-अपमान न समझ बैठे, इसीके स्पष्टीकरणमे मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि प्रस्तुत युगका मनुष्य उन वास्तविक मनुष्यों और पशुसे बनाये हुए मनुष्योंकी सम्मिलित सन्तान है और जो भी मनुष्य इस तथ्यको अपने भीतर देखकर स्वीकार करनेके लिए उद्यत हो जाता है वह किसी शुद्ध मानवीय विधानके अनुसार द्रुत गतिके साथ अपने शुद्ध मानवत्वकी ओर अग्रसर होने लगता है।

अदितिकी आँखें

उसने असाधारण त्याग, संयम और सेवाका जीवन बिताया था। समाजके आचारिक और राजनीतिक विभागोंमे उसने बड़े-बड़े काम किये थे और अपनी विद्वत्ता और दक्षताके कारण उसकी गिनती समाजके महान् निर्माताओंमे हो गयी थी।

उसकी जीवन-अवधि पूरी होनेपर स्वर्गस्थ मानवों और देवताओंने अपने लोकमें उसका बड़े समारोहके साथ स्वागत किया।

लगभग सभी स्वर्ग-निवासियोंका अनुमान था कि इस मानव-आत्माको ही अगली बार भूतलपर मानव-जातिके नये सामाजिक विधानका प्रधान विधायक बनाकर भेजा जायेगा। मानव-जातिके नये युगका चक्र प्रारम्भ होनेको था और देवताओंकी आँखें उपयुक्त विधायककी खोजमे संलग्न थीं। विधायकका पद-भार सँभालनेके योग्य दीखनेवाली ऐसी पाँच-छह मानव-आत्माएँ पहलेसे ही स्वर्गमे पहुँची हुई थीं।

स्वर्गके विधान-भवनमें देवों और मानव-पितरोंकी सभा जुडी। महामनु भगवान् विवस्वान् इसकी अध्यक्षता कर रहे थे और देवों-मानवोंकी जननी लोकमाता अदिति भी उसमें उपस्थित थीं।

स्वर्गलोकमें विद्यमान, मानव विधानके विधायक पदके लिए उपयुक्त सभी मानव-आत्माओंके भू-जीवनके लेखे-जोखे लिपिका-जनोंने प्रस्तुत किये। इस नवागत मानवात्माके गुण और कार्य दूसरे पाँच-छह निर्वाच्य जनोंसे कहीं अधिक निकले।

'हमारे सम्मान्य नवागत मनुपुत्रका जीवन-लेखा ही इस समयके समागत मनुपुत्रोंमें सर्वश्रेष्ठ है। इस मनुपुत्रको मानव-जातिके अगले नीति-विधायकके पदका दायित्व देनेमे क्या आपमेसे किसीको, या स्वयं इस मनुपुत्रको

कोई आपत्ति है ?' भगवान् विवस्वान्‌ने सारी सभाको सम्बोधित कर कहा और उनकी आँखें उस मनुपुत्रपर विशेष रूपसे जाकर टिक गयीं।

'मुझे आपत्ति है,' लोक-माता अदितिका स्वर मुखरित हुआ और सभीकी आँखें उनके आसनकी ओर घूम गयीं, 'और मेरी आपत्तिका समर्थन करना स्वयं इस मनुपुत्रके लिए कठिन न होगा।'

अदितिके आसनसे दो तरुण, श्रद्धा-समर्पण एवं अनुराग विवशता-भरी स्नेहार्द्र आँखें उस मनुपुत्रकी ओर झाँक उठीं। वह सिहर उठा। उसने पहचाना : ये लोकमाता अदितिकी सुपरिचित नहीं, एक मुग्धा नवयुवा सुन्दरीकी आँखें थीं जिनका साक्षात्कार उसने अपनी मृत्युके कुछ वर्ष पूर्व किया था ! उस निवेदनमयी दृष्टिका उसने उनकी स्थितिके अनुकूल कोई मधुर उत्तर नहीं दिया था, क्योंकि वह सुन्दरी अति तरुण थी और यह अति प्रौढ़; वह एक साधारण याचनाशील नारीत्वमयी तरुणी थी और यह मानवी रूपाकर्षणोंकी संवेदनाओंसे मुक्त एक संयमशील अति-प्रतिष्ठित जन-नायक। अदितिकी उस दृष्टिमें इस मनुपुत्रने अपने अतीतके उस छोटे-से उपेक्षित सम्पर्कको पुनः स्पष्ट रूपमें पढ़ लिया और उसका सार्थक अभिप्राय भी अब अनायास ही उसके सामने खुल गया। अपनी आँखें नीची कर उसने अपनी अपात्रता स्वीकार कर ली।

मानव-समाजके अगले प्रधान विधायक पदके लिए निर्वाचन उन मानवोंमें से किसीका नहीं हो सका, क्योंकि दूसरोंमे चरित्र और क्षमताकी अन्य कुछ कमियाँ शेष थीं।

× × ×

वैधानिक सभा विसर्जित हुई। वहाँ अवशिष्ट कुछ जनोंकी शंकाका समाधान करते हुए एक देवताने कहा —

'नारीकी आँखोंमे जो सहज स्फुरित निमन्त्रण होता है—वह बालाकी मुग्ध जिज्ञासा हो वा वृद्धाका तरल वात्सल्य, प्रौढ़ाकी सुविकसित ममता हो या तरुणीकी मदिर अनुरक्ति—वह अदितिका ही निमन्त्रण होता है,

और जो व्यक्ति आत्मीयताकी भावनाके साथ उसका अवस्थानुकूल सत्कार नहीं कर सकता वह और गुणोंमें कितना ही अग्रणी क्यों न हो, मानवीय सवेदनाके विकासमे अभी बहुत पीछे है, और इसीलिए मानव-जातिके आचारिक विधान-निर्माणका कार्य उसे नहीं सौंपा जा सकता।'

कहते हैं कि नये युगके मानवीय आचारिक विधानके निर्माणका कार्य सौंपनेके लिए देवजन किसी सर्वतोमुखी समर्थ मनुपुत्रको खोज पाये हैं या नहीं, ऐसी कोई सूचना अभीतक प्रसारित नहीं हुई।

धनीकी खोजमें

अपनी निर्धनतासे तंग आकर मैने अपने नगरके ज्योतिषीकी शरण ली । उसने अपने सबसे बड़े संहिता-ग्रन्थका अनुशीलन करके मुझे बताया कि पिछले जन्ममें मैं एक बहुत धनवान् व्यक्ति था और अपने एक प्रशंसक प्रियजनके पास मैंने, बहुत-कुछ उसकी सहायताके अभिप्रायसे ही, एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ जमा कर दी थीं । उस व्यक्तिका इस बार एक अत्यन्त समृद्ध व्यक्तिके रूपमे पुनर्जन्म हो चुका है और यदि मैं उसके सम्मुख पहुँच जाऊँ तो निःसन्देह उपर्युक्त धन-राशिको भरपूर ब्याज और सम्मान-के साथ मुझे लौटानेकी प्रेरणा उसके मनमे उत्पन्न हो जायेगी ।

ज्योतिषीसे आवश्यक संकेत लेकर मैं उस व्यक्तिकी खोजमें निकल पड़ा । उसने मुझे बता दिया था कि उसका भवन और भवन-द्वार अमुक-अमुक प्रकारका होगा ।

किन्तु मैं इतना अशिक्षित और अव्यावहारिक तो नहीं था कि वैसे व्यक्तियोंके सम्मुख पहुँचकर अपना मन्तव्य और अभिप्राय खुले शब्दोंमे कहकर जगह-जगह अपनी हँसी कराऊँ । उनके सम्मुख आनेके लिए मुझे पहले अपना कुछ दिखावटी अभिप्राय बताना पड़ेगा, यही सोचता हुआ मैं अपनी यात्रापर निकल पड़ा ।

चलते-चलते ज्योतिषीके बताये आकार-प्रकारका एक भवन और भवन-द्वार मुझे दिखायी पड़ा । प्रहरीने मुझे भीतर जानेसे रोका और उसके पूछनेपर मैंने बताया कि मैं उस भवनके मालिकसे मिलना चाहता हूँ ।

‘किसलिए मिलना चाहते हो ?’ प्रहरीने पूछा ।

उत्तर सोचनेमे मुझे कुछ विलम्ब लगा । प्रहरीने स्वयं ही फिर पूछा :

‘तुम कुछ आर्थिक सहायता चाहते हो ?’

'हाँ-हाँ, भाई मैं बहुत निर्धन हूँ। कुछ धन चाहता हूँ।'

'भवनके मालिकसे तो तुम्हारीं भेंट नही हो सकती। तुम लिखकर अपना प्रार्थना-पत्र दे दो। उनकी इच्छा होगी तो तुम्हे कुछ धन मिल जायेगा।'

मैंने प्रहरीके आदेशका पालन किया। अपने एक सहायकके हाथों प्रहरीने मेरा प्रार्थना-पत्र भवनके भीतर भेज दिया। दिनभर मै द्वारके बाहर बैठा रहा। किन्तु सन्ध्या तक जब कोई उत्तर नहीं आया तो मैं आगे बढ़ गया।

कुछ दिनोंकी यात्राके बाद एक दूसरा द्वार मुझे उसी तरहका दिखायी दिया। उसके प्रहरीसे भी वैसी ही बातचीत हुई। उसीके प्रश्नोंसे सुझाव पाकर मैंने कह दिया कि हाँ, मैं इस भवनके मालिककी नौकरी करना चाहता हूँ। अबकी बार मेरी प्रार्थनाका उत्तर शीघ्र ही भीतरसे आ गया कि नौकरीकी कोई जगह वहाँ खाली नहीं है।

यात्रा मैंने जारी रखी। बहुत दिन बाद एक तीसरा द्वार मुझे फिर उसी बनावटका दिखायी दिया। भिक्षा और नौकरीके प्रस्तावोंकी विफलता मैं देख चुका था। इसलिए इस भवनके प्रहरीसे मैंने स्वयं ही कहा कि मैं इस भवनके मालिकके हाथों अपने-आपको पूर्णतया बेचना चाहता हूँ। मेरे इस प्रस्तावपर प्रहरी बहुत अचकचाया और उसने स्वयं ही भीतर जाकर मेरी बात कही। प्रहरीके पीछे-पीछे एक अन्य व्यक्ति तुरन्त ही भवन-द्वारपर आया। मैं समझता हूँ कि वह मालिकका अन्तरंग मन्त्री ही होगा। उसने ध्यानपूर्वक मुझे देखा और तब कहा—

'आदमियोंको हम खरीद तो सकते है पर तुम्हारी आवश्यकता हमें नहीं है।'

हताश मैं आगे बढ़ा। किन्तु बहुत दूरकी यात्रा करनेपर भी मुझे फिर कोई उस प्रकारका भवन-द्वार नहीं दिखायी दिया। अन्तमें उस व्यक्तिकी खोजका विचार छोड़कर मै वापस अपने घरकी ओर लौट पड़ा।

और लौटते हुए एक दिन जब मैं सन्ध्याकी लम्बी छायाओंपर दृष्टि झुकाये चुपचाप चला जा रहा था, मैंने सुना मेरे समीप पीछेसे किसी आर्त कण्ठस्वरने मुझे पुकारा। घूमकर मैंने उस व्यक्तिको देखा, और देखा कि मैं ज्योतिषीके बताये प्रकारके ही एक भवन-द्वारके समीप हूँ। हो सकता है वह भवन मेरे पिछले आजमाये उन तीनमे से ही कोई एक हो, या कोई चौथा ही हो जिसे मै अपनी असावधानीमे अनदेखा छोड़ गया हूँ।

'बहुत दिनोंसे मुझे तुम्हीं जैसे किसी व्यक्तिकी प्रतीक्षा थी।' भवनके भीतर मुझे ले जाकर समृद्धतम सत्कारोंके उपरान्त उसने मुझसे कहा—'केवल इसीलिए नहीं कि तुम्हारे सुख-सत्कारमें दस-बीस सहस्र मुद्राएँ व्यय करके मुझे एक आन्तरिक सन्तोष प्राप्त होगा, प्रत्युत विशेषकर इसलिए कि तुम्हारे उस अनमोल हीरेकी पूँजीकी भी मुझे आवश्यकता है जो तुम्हारा सह-जन्मजात है, तुम्हारे बढ़े हुए केश-जूटमें छिपा हुआ चमक रहा है, और जिसके बिना मेरी समृद्धि मेरी अभीष्ट पराकाष्ठा तक नहीं पहुँच सकती।'

अपने विश्राम-कक्षमे लगे बड़े दर्पणके सम्मुख मुझे खड़ा करके इस स्वजनने मुझे दिखाया मेरे केश-पुंजने एक स्थलपर गुंफित होकर सचमुच एक अत्यन्त तेजस्वी हीरेका रूप धारण कर लिया था और उसकी ज्योति आच्छादनकारी केश-जालको छेदकर बाहर निकली पड़ रही थी—कैसे, कबसे, मैं नहीं कह सकता।

× × ×

लेकिन ठहरिए, कहीं आप व्यर्थ ही मेरे उस स्वजनके नाम और पते-ठिकानेके सम्बन्धमें जिज्ञासा न करने लग जायें, इसलिए मैं इतना और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरी वापसीकी यात्रा अभी केवल पिछले ही दिन प्रारम्भ हुई है और इस कथाकी जो अन्तिम बात मैंने कही है उसका पूर्व-दर्शन मुझे अभी-अभी संहिताओंकी ज्योतिषसे भी ऊँचे एक अपार्थिव स्वप्न-विज्ञानके द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

मन्दिर और वेश्या

एक राजाने एक बार एक नया देश जीता। इस देशका शासन-प्रबन्ध करनेके लिए उसने अपने दो चुने हुए अधिकारियोंको अपना प्रतिनिधि और उपशासक बनाकर भेजा। शासनका पूरा कार्य उसने इन दोनोंको बराबर-बराबर बाँट दिया। ऐसा करनेमें राजाका अभिप्राय यह था कि उन दोनोंमें जो अधिक उपयुक्त सिद्ध होगा उसे ही वह स्थायी रूपसे वहाँका शासक बना देगा।

यह राजा बड़ा विद्वान् और धार्मिक प्रकृतिका था और प्रजाकी सेवाको अपना सर्वोपरि धर्म मानता था। इस धर्म-पालनके लिए उसने आजीवन अविवाहित रहना अधिक सुविधाजनक समझा था। और इस प्रकार स्वयं बहुत सादा और संयमपूर्ण जीवन बिताता था।

जिस नये देशको उसने जीता था वह संयोगवश उस युगमें संसारके सबसे अधिक सुन्दर नर-नारियोंका देश था और वहाँकी तरुणियोंका रूप-आकर्षण तो निस्सन्देह अनिवार्य ही था।

इन दोनों नियुक्त शासकोंने बड़ी योग्यता और संलग्नताके साथ अपने-अपने कार्यको पूरा किया और देशमें न्याय, सुख, शान्ति और समृद्धिकी हर प्रकारकी व्यवस्था सुचारु रूपसे चल निकली। देशकी प्रजा इन शासकोंके शासनसे बहुत सन्तुष्ट हुई।

अन्तमें राजा स्वयं इस देशका निरीक्षण करने गया। प्रजाने उसका पूरे स्वागत-समारोहके साथ सत्कार किया। राजाने दोनों शासकोंके कार्यो, उनकी कार्य-पद्धति और उनकी व्यक्तिगत दिनचर्याका भी निरीक्षण किया। उनके कार्योंमें तो कहीं भी कोई कमी या असावधानी नहीं थी, किन्तु उनके

व्यक्तिगत जीवनमें दो विशेष बातें उसे ज्ञात हुईं : उनमें से एक हर रातको देवालयमें जाया करता था और दूसरा एक वेश्यालयमें।

शासन-गृहके कुछ और अधीनस्थ कर्मचारियोंके सम्बन्धमें भी राजाने कुछ जाँच-पड़ताल की और तत्पश्चात् अपना अंतरंग दरबार आयोजित किया।

इस दरबारमें राजाने दोनों उपशासकोंको अपदस्थ करके एक अन्य अधीनस्थ कर्मचारीको उस राज्यका उपशासक घोषित करते हुए कहा—

'इन दोनों अधिकारियोंको अपने कर्त्तव्य-कार्यमे जो पूर्ण तृप्ति मिलनी चाहिए थी वह नही मिली और इसीलिए यहाँकी सुन्दरियोंका रूप दोनोंके मानसिक संतुलनमे विक्षेपका कारण बन गया। उससे बचनेके लिए पलायन पूर्वक एकने वेश्याका आश्रय लिया और दूसरेने देव-मन्दिरका। वेश्याकी अपेक्षा मन्दिरका आश्रय लेना किसी दृष्टिसे कुछ अच्छी बात मानी जाती है किन्तु दोनोंमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। वेश्याके पास जानेवाला एक दिन वेश्यासे विरस होकर मन्दिरमे जायेगा और मन्दिरमे जानेवाला एक दिन विचलित होनेपर अवश्य ही मन्दिरसे अतुष्टिका अनुभव करके वेश्याका आश्रय लेगा। अतएव यह तीसरा नवयुवक कर्मचारी जो अपनी योग्यता एवम् कार्य-पटुताके कारण दोनों अधिकारियोंका समान सम्मान-भाजन हुआ है और जिसने यहाँ आते ही अपनी मनोनुकूल यहाँकी एक सुन्दरी तरुणीके साथ विवाह कर लिया है, और जिसे यहाँके प्रजाजनका भी सबसे अधिक सम्पर्क प्राप्त है, इस देशका उपशासक होनेके सर्वथा योग्य है और इसे ही मैं इस पदपर आसीन करता हूँ।'

दानकी विडम्बना

किसी नगरमें एक व्यवसाय-कुशल सेठ बड़ा नीतिवान् था। वह अपने सहकारी व्यापारियोंको और सेवकोंको उनकी सेवाओंके बदले सदैव भरपूर आर्थिक पुरस्कार देता था। किन्तु उसके मित्रोंकी संख्या भी बहुत थी और वे उसकी हर समयकी सेवा करते रहते थे। स्वभावतया उन मित्रोंकी सेवाओंका कोई मूल्य उसे नहीं चुकाना पड़ता था। मित्रोंकी सेवाओंका मूल्य चुकानेका कोई प्रश्न भी कैसे उठ सकता था!

यह सेठ मित्र बनानेकी कलामे पटु था और प्रतिमास निमन्त्रण-सत्कार-द्वारा दस-पाँच नये मित्र बनानेका उसने नियम कर लिया था।

एक बार सेठने पड़ोसके एक गाँवके दो ब्राह्मण-बन्धुओंको अपने इसी क्रममें निमन्त्रित किया। इन ब्राह्मण बन्धुओंकी, इनके पाण्डित्यके कारण, बडी प्रशंसा थी और राजकीय अधिकारियों, यहाँतक कि राज-दरबारमे भी इनका यथेष्ट मान था। दोनों पण्डितोंने बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञताके साथ सेठकी हवेलीमे आकर उसका आतिथ्य-सत्कार ग्रहण किया। उनमे से एकने जो बहुत सरल और लोक-चातुर्यसे रहित था, अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए यह भी कह दिया कि सेठका निमन्त्रण उसके लिए एक बहुत बड़ा आश्रय सिद्ध हुआ है, क्योंकि वह दो दिनसे भूखा था और उस समय तक उदर-पूर्तिका कोई साधन उसके समीप नहीं था।

सेठकी वणिक्-बुद्धि बहुत तीव्र थी। इस ब्राह्मणके सत्कारमें व्यय हुआ धन उसने अपने दानके खातेमें लिखवा दिया और दूसरे ब्राह्मणका यथा-नियम व्यवसायके खातेमे। बात यह थी कि सेठका दान-खाता बहुत कम भर पाया था और उसे यथेष्ट मात्रामे भरनेकी उसे चिन्ता थी।

व्यवसायका खाता प्रति-वर्ष राजाके दरबारमे आय-कर निर्धारणके लिए, और दानका खाता हर सातवें वर्ष कर्म-देवताके दरबारमे सेठके कुल-देवताके माध्यमसे आवश्यक पुरस्कार-निर्धारणके लिए प्रस्तुत किया जाता था।

कुछ समय बाद सेठपर राजकीय कर-विभागकी ओरसे एक बड़ी आपत्तिके रूपमें एक बड़ा कार्य-संकट आ पड़ा। सेठने अनुमान लगाया कि वे दोनों ब्राह्मण-बन्धु इस संकटमें उसकी सहायता कर सकते हैं। उसने उनसे सहायता माँगी, और उनके प्रभाव एवं अनुशंसासे वह सकट टल गया। इस सहायताके उपलक्ष्यमे सेठने उन दोनों बन्धुओंको पत्र लिख-कर उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिया और कहा कि उन जैसे समर्थ मित्रोंको पाकर वह बहुत गौरवान्वित हुआ है। उसने यह भो उन्हें लिखा कि किसी प्रकारकी आर्थिक संकीर्णताके अवसरपर उन्हे निस्संकोच उसे याद करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि सेठका यह कार्य यदि उसके मित्रोंसे भिन्न किसी अन्य व्यक्तिने किया होता तो वह अपनी संकटग्रस्त धन-राशिका कमसे-कम दशमांश उस व्यक्तिको पारिश्रमिक रूपमें अवश्य ही भेंट कर देता।

सात वर्ष पूरे होनेपर उस सेठकी दान-बही उसके कुल-देवताके द्वारा स्वर्ग लोकमें कर्मराजके दरबारमे प्रस्तुत की गयी। कर्मराजके लिपिका-जनोंने अपने अनुप्रेक्षण और मापक यन्त्रोंद्वारा उस बहीका निरीक्षण करके घोषित किया कि उसमें एक ब्राह्मणके नाम डाला हुआ दान सहस्रगुणित होकर व्यवसायके अंकोंमें परिवर्तित हो गया है और यह धनराशि दूसरे सभी दानोंकी सम्मिलित धन-राशिसे छह गुनी अधिक है। इस प्रकार यह बही दानकी नहीं व्यवसायकी बही बन गयी है और इसके अनुसार वह एक लाख स्वर्णमुद्राओंका अपने लोक-बन्धुओंका ऋणी है। इस दान-बहीपर लिपिका-जनोंने अपनी टिप्पणी दी कि उसके अंक लोक भाषामे

अनूदित करके इसके भूलोकके राज-दरबारमे भेज दिये जायें, जिससे इस सेठका आवश्यक लेन-देन वहाँ पूरा कराया जा सके।

और कर्मराजके आदेशसे लिपिका-जनोंकी इस टिप्पणीको यथोचित रूपमें कार्यान्वित भी किया गया।

लक्ष्मीवाहन

बड़े घरकी बुरी बात भी भली करके बतायी जाती है और बुराईका दूत भलाईका देवता बनाकर पूजा जाता है। लक्ष्मीवाहनकी यह कथा सच-सच लिखनेका साहस किसी पुराणकारने नहीं किया था। आप उसे अपने ही तक सीमित रख सकें तो लीजिए सुन लीजिए।

एक बार भगवान् विष्णु और लक्ष्मीजीमें कुछ खटपट हो गयी। बात यह थी कि विष्णुजीने अपना डेरा अपने श्वसुरके घर क्षीरसागरमें डाल लिया था और लक्ष्मीजीको यह पसन्द नहीं था। वे अपने मायकेसे निकलकर पतिकुलमे निवास करना चाहती थीं। होते-होते बात बहुत बढ़ गयी और एक दिन उन्होंने पतिको अपने पितृ-गृहमें ही छोड़कर क्षीरसागर-से अकेले ही प्रस्थान कर देनेका चुपचाप निश्चय कर लिया।

रात्रिका एक प्रहर बीतने पर जब सब लोग सो गये तब लक्ष्मीजी चुपचाप क्षीरसागरसे बाहर निकलीं। सारा सागर उनके घरका आँगन था, उसका कोई भी छोर उनके लिए दूर नहीं था। सागर किनारे धरती-के अंचलपर पाँव रखते ही उन्हें एक वाहनकी आवश्यकनाका अनुभव हुआ—धरती या आकाशपर वे अधिक दूर पैरों नहीं चल सकती थीं।

समुद्र-तटकी धरतीपर बसा एक नगर था। लोग अपने-अपने घरोंके द्वार बन्द कर सो रहे थे। द्वार-द्वारपर जाकर लक्ष्मीजीने आहट ली। बड़ी कठिनाईसे एक घर उन्हे ऐसा मिला जिसका मालिक जाग रहा था। लक्ष्मीजीने द्वारपर थपकी दी। गृहपतिने द्वार खोल दिया और अभ्यागता-को पहचानकर उनकी यथोचित आवभगत की और इतनी रातमे अकेले वहाँ आनेका कारण पूछा।

'मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे सूर्योदयसे पूर्व भगवान् शंकरके कैलास

पर्वतपर पहुँचा दो। 'मैं गृहस्थ जीवनसे वैराग्य लेकर वहाँ तपस्या करना चाहती हूँ।' लक्ष्मीजीने अपना अभिप्राय बताया।

"किन्तु देवी, मै साधारण द्विपाद मानव आपको रातों-रात इतनी दूर कैसे पहुँचा सकता हूँ! रात-भर मे तो मै कठिनाईसे धरतीके आठ कोस चल पाऊँगा। रातके इस घने अन्धकारमें मुझे कुछ दिखायी भी नही देगा—घरमे तो इस दीपकके सहारे अपने दिनका अन्तिम कार्य पूरा कर रहा हूँ।' गृहस्थने कहा। वह एक साधारण कोटिका फिर भी दान-सत्कारके लिए लोक-प्रसिद्ध व्यवसायी था और अपने नियमानुसार दिन-भरकी कमाई रातमे समाप्त करके सोता था; इसके बिना दूसरे दिन धनोपार्जनका वह स्वयंको अधिकारी नहीं मानता था।

'तुम्हारे चलनेकी चिन्ता तो मैं कर लेती,' लक्ष्मीजीने इस गृहस्थके वक्षमें छिपे उसके हृदयको अपनी आँखोंकी पार-किरण-दृष्टि—एक्स-रे-साइट—से देखते हुए कहा—'तुम्हारे हृदयका आकार कपोत पक्षीका है, जो कि मेरे लिए सुखासनका काम दे सकता है किन्तु उसकी आँखें सूर्य-प्रकाशसे भिन्न किसी दूसरे प्रकाशको नही देख सकतीं। रहने दो मै कोई दूसरा वाहन खोजूँगी, तुम्हारे दैनिक पुण्यानुष्ठानमे बाधक होनेका साहस भी मैं नहीं कर सकती।'

सारे नगरकी परिक्रमा करनेपर लक्ष्मीजीको एक दूसरा घर भी जागता-खनकता मिल गया। यह एक धनिकका घर था और घरका मालिक द्वार बन्द किये हुए अँधेरे कक्षमे ही अपनी दिन भरकी कमायी ब्याज-मुद्राओंको गिन रहा था।

द्वारपर थपकीकी आहट पाकर उसने घबराकर जल्दी-जल्दी अपनी थैलियोंको बन्द किया और बाहर आकर देखा, लक्ष्मीजी उसके द्वारपर उपस्थित थीं। वह उनके पैरोंपर गिर पड़ा और उनसे विनती करने लगा कि वे उसके घर ही स्थायी रूपसे निवास करें।

लक्ष्मीजीने उसके सिरपर अपना वरद हस्त रखा और अपना अभिप्राय

उसे कह सुनाया। अपनी पार-किरण-दृष्टिसे उन्होंने देखा कि इस धनिक-का हृदय उलूक पक्षीके आकारका था और अन्धकारमे चमकीली मुद्राओंको गिनते-गिनते उसके हृदयकी आँखें सूर्यके सात्त्विक प्रकाशकी अनभ्यस्त और केवल अन्धकारके समय धातुकी तामसिक चमकमें ही कुछ देख सकनेकी आदी हो गयी थीं। इस पक्षीकी पीठ यद्यपि सवारीके लिए कुछ असुविधाजनक ही थी, पर लक्ष्मीजीके लिए दूसरा कोई अवलम्ब भी नहीं था।

इस व्यक्तिको उसकी इच्छा भर मुद्राओंके वरदानसे राजी करके लक्ष्मीजीने उसका उलूकाकार हृदय शरीरसे बाहर निकाला, उसके पंखोंको सूँता, और उसकी पीठपर सवार हो गयीं। अपने पंख फड़फड़ाता, घू-घूका अप्रिय रव करता हुआ यह धनिक-हृदय लक्ष्मीजीको लिये आकाश मे उड़ चला।

देव-जगत्की नवीनतम गोपनीय विज्ञप्ति यह है कि लक्ष्मीजी अभीतक कैलासधाममें नहीं पहुँचीं और देवदूतोंकी मण्डलियाँ लोक-लोकान्तरोंमे उनकी खोज कर रही है।

इस कथाके मानव-पाठकोंके समक्ष इसकी सार्थकता स्पष्ट है। उस धनिककी सन्तति—आजके धनिकोंका एक बड़ा वर्ग—हृदय-हीन इसलिए है कि उसका हृदय लक्ष्मीजीकी सेवामे गया हुआ है; रातके अपने 'उजाले' मे वह जितनी दूर आगे बढ़ता है दिनके 'अन्धकार' में उससे कुछ अधिक ही इधर-उधर भटक जाता है और यही कारण है कि लक्ष्मीजीका भी कोई ठिकाना नहीं रह पाया है।

पुराणकारोंने लक्ष्मीके वाहन धनिक-हृदय उलूकको सबसे अधिक बुद्धिमान् कहा है, सो वह भी एक तरहसे ठीक ही कहा है—बड़े घरकी बात और बड़ी रानीके वाहनको वे और-कुछ कहनेका साहस करते भी कैसे!

ॐ

बूचड़की कमाई

बहुत वर्ष पहलेकी बात है, उस दिन मैंने अपने नगरके बूचड़खानेका निरीक्षण किया।

हज़ारसे ऊपर गायें और बकरियाँ जिन्होंने बुढ़ापेके कारण दूध देना बन्द या कम कर दिया था अलग-अलग पंक्तियोंमे खड़ी थीं और उनके शरीरोंको काटनेवाली लोहेकी पैनी मशीनें उनके ऊपर झूल रही थीं।

मशीन-युगकी यह साफ़-सुथरी और सुगम व्यवस्था देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और बूचड़खानेके मालिकको मैंने इसके लिए बधाई दी।

पशुओंकी पंक्तियोंके बीच घूमते हुए अचानक मेरी दृष्टि एक बूढ़ी गायपर पड़ी। वह मेरे एक पड़ोसी मित्रकी गाय रह चुकी थी और उसका दूध मैं भी अनेक बार पी चुका था।

अचानक मैंने देखा कि मैं भी एक गाय हूँ और उसी गायकी बग़लमे मैं भी एक ज़ंजीरके सहारे बँधा हूँ। सिरपर झूलती मृत्यु और पीड़ाके भयसे मैं काँप उठा।

लेकिन एक देवतासे कुछ परिचय—मित्रताकी राह देवताओंके दरबारमें मेरी कुछ पहुँच थी। मैंने तुरन्त अपने मित्र देवदूतका आवाहन किया और उससे प्रार्थना की कि वह तुरन्त ही मेरी अरदास देवताओं तक पहुँचाकर इस बूचड़खानेकी मशीनोंको इसी क्षण नष्ट करा दे और यहाँके सभी पशु जब बाहर निकल जायँ तो इस इमारतको आग लगवा दे।

मेरी प्रार्थनाका प्रभाव नहीं तो आप इसे संयोग ही समझ लीजिए, उस समय छतोंपर लटकती हुई पैनी मशीनें पशुओके शरीरों तक नहीं उतरीं। बूचड़खानेके कर्मचारियोंने कहा कि मशीनोको चलानेवाली बिजली बिगड़ गयी थी।

मैं पुनः अपने मानव-शरीरमे लौट आया था और बूचड़खानेके

मालिकका हाथ पकड़े उसके द्वारपर पहुँच गया था। अपनी आन्तरिक सफलतापर मैं मन-ही-मन बहुत प्रसन्न था। मुझे विश्वास था कि स्वीकृत दैवी-विधानसे आजकी रात यह बूचड़खाना अवश्य ही आगकी लपटोंमें भस्म हो जायेगा।

'मैंने यह बूचड़खाना दिखानेके लिए आपको खास तौरसे इसलिए दावत दी थी कि मैं इसकी आमदनीमें आधा-साझा आपको देना चाहता हूँ। आप एक माने हुए फ़क़ीर हैं और मेरे बुजुर्गोंका यह रवैया रहा है कि अपने कारोबारकी आमदनीका आधा हिस्सा फ़क़ीरोंको बराबर देते रहे हैं। इस बूचड़खानेका मुनाफ़ा आजकल छह हज़ार रुपया रोज़ानाका है।' बूचड़खानेका मालिक कह रहा था।

छह हज़ार यानी मेरे लिए तीन हज़ार रुपया प्रतिदिन! मैं सोचने लगा।

घर पहुँचकर अपने मित्र-देवताका मैंने फिर आवाहन किया और अपना संचित पूरा तपोबल लगाकर देवताओंके पिछले आदेशको रद्द करा दिया।

चौथे वर्ष मैं नगरका सबसे बड़ा—सरकारको सबसे अधिक आयकर देनेवाला—व्यापारी घोषित किया गया। नगर-सभाने मेरा नाम नागरिकोंके एकसे काटकर दूसरे अति सम्मानित रजिस्टरमें लिख दिया था।

उसी वर्ष नगरवासियोंने मेरे सम्मानमें एक बड़ा भोज दिया।

मेरा मित्र-देवता भी उसी अवसरपर मुझे अपना अन्तिम प्रणाम देने आया और बोला:

'देवताओंने भी तुम्हारा नाम अपने एक रजिस्टरसे काटकर दूसरेमें लिख लिया है; उसके अनुसार यह आवश्यक है कि तुम परलोकमें अपने निर्वाहके लिए यहाँ कमायी हुई सोने-चाँदीकी सम्पत्तिको मृत्युके समय अपने साथ ले आनेकी व्यवस्था भी कर लो।'

अचुम्बित चुम्बन

दस वर्षकी अखण्ड साधनाके पश्चात् रूपकी देवीका स्वर उसने फिर सुना :

'तुम्हारी प्रेम-साधना सम्पन्न हुई मेरे आराधक, अब तुम्हीं मेरे आराध्य हुए। मैं यह आयी।'

उसने आँखें खोलीं। देवी सम्मुख थी। अबकी बार एक नये ही शरीरमें विपुलतर सौन्दर्य, नयी आँखोंमें मदिरतर समर्पण और नये होठोंमे चुम्बनका मधुरतर रस लिये।

उसका मुख उन अधरोंकी ओर बढ़ा और उसकी बाँहें दो सुदृढ लौह-शलाकाओंसे जा टकरायीं।

उसने अब देखा, उसके और उस रूपमतीके बीच लौह-छड़ोंसे निर्मित एक ऊँची दीवार थी। वह ठिठक गया।

'मेरी स्थिति यही है। युग-परम्पराकी वन्दिनी, युग-मर्यादा द्वारा निर्मित इस लौह-शलाकाओंके वृत्त-महलमे ही मेरा निवास है। कारावास-की शलाकाओंके इस पार मैं अपने सहस्र-सहस्र रूपोंमें अपने प्रेमियोंके स्पर्शके लिए तड़पती रहती हूँ, उस पार वे तड़पते रहते हैं। किन्तु इससे क्या! आगे आओ! इन दो शलाकाओंके बीच इतनी दूरी है कि तुम उसकी राह मेरे मुखका चुम्बन ले सकते हो।' देवीने कहा।

वह स्थिर, निश्चेष्ट खड़ा रहा।

'तुम मेरे आवक्ष आलिंगनके लिए आतुर हो। उसके लिए तुमसे अधिक आतुर मैं हूँ। तब यह लो, इस तीक्ष्ण लौह-खंडिनीसे इनमें-से एक-दो शलाकाओंको काटकर तुम मेरे पास आनेका मार्ग बना सकते हो।' कहते-कहते उस सुन्दरीने दो शलाकाओंकी बीच्र संधिसे एक पैना अस्त्र

उसके पाँवोंके पास डाल दिया।

अब उसकी चेष्टा जगी। स्वर् खुला :

'तुम्हारा यह अनुराग पाकर कृतार्थ हुआ हूँ, मेरी रागमयी! दस वर्ष पहले तुम्हें सम्मुख पाकर तुम्हारी अर्चनामें मुझसे जो भूल हो गई थी उसकी पुनरावृत्ति नहीं करूँगा। तुम्हारे मधुसे पहले तुम्हारी विस्तृत पीड़ाका ही पान करूँगा। एक अपनी तृप्तिके लिए तुम्हारे इस रूप तक पहुँचनेका मार्ग बनाकर नहीं, तुम्हारे सहस्र-सहस्र रूपोंके सालिंगन चुम्बनोंको तुम्हारे सहस्र-सहस्र प्रेमियोंके लिए मुक्त करके ही मैं तुम्हे वरण करूँगा। तबतक इस कारागारकी परिधि-शलाकाओंसे दूर हटकर अपनी शयन-स्थलीमें ही तुम विश्राम करो।'

रूपदेवीकी दी हुई कटार उसने उठा ली और उसका पैना अग्रमुख विद्युत् गतिसे उसके हृदयके मध्य विन्दु तक जा पहुँचा। इस प्रकार निस्सृत अपने हृदयके रक्तसे उसने रूपदेवीके सम्मुख की हुई अपनी व्रतमयी प्रतिज्ञा पत्रांकित कर दी। पृथ्वीके चौदह स्वर्गोंके समस्त तान्त्रमुद्रक (टेलिप्रिंटर) उसी क्षण एक-साथ इसकी विज्ञप्तिसे खडक उठे और आकाशके अंकनालय-में भी उसकी यह प्रतिज्ञा अंकित कर ली गयी। समीरके एक सूक्ष्म प्रवाहने यह सन्देश सम्पूर्ण जन-मानसके अन्तस्-पटल तक पहुँचा दिया।

× × ×

विज्ञ क्षेत्रोंमें चर्चा है कि उस प्रेमाराधककी उपर्युक्त क्रियताका लोक-मंगलकी योजनाओंमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, वह उसकी प्रेम-साधनाकी एक माध्यमिक दीक्षाका ही विवरण है और उस दीक्षाके फल-स्वरूप उसके हाथोंमें होकर कुछ ऐसी शक्तियोंका प्रवहन प्रारम्भ हो गया है जो रूपदेवीके कारागारकी चौरासी सहस्र लौह-शलाकाओंको जर्जर करने और उनमें-से कतिपयको स्वल्पकालके भीतर ही विगलित कर देनेके लिए पर्याप्त हैं।

शीतल ज्वाला

रामगुप्तके प्रवचनोंकी चर्चा नगर-भरके नर-नारियोंकी जिह्वा पर थी।

चातुर्मासके लिए वह राज-गृहका निमन्त्रित अतिथि था। उसके दैनिक प्रवचनकी व्यवस्था राजोद्यानके विशाल मण्डपमें की गयी थी। राजकुल और प्रजावर्गके सभी व्यक्तियोंके लिए इस मण्डपके द्वार मुक्त थे।

उसकी वार्ताओंमें प्रेम-तत्त्वका निरूपण था। उसका प्रतिपादित प्रेम सागर-जैसा अगाध, पवन-जैसा अबाध, चन्द्रिका-जैसा शीतल और आकाश-जैसा सर्वस्पर्शी एवं निरीह था। वासना, विवशता, उद्वेग और वेदनाका उसमें कोई स्थान नहीं था।

रामगुप्तके उपदेश गहन होते हुए भी सरल एवं सचित्र थे। प्रत्येक श्रोताके मनमें वे सहज ही उतर जाते थे। उसकी चुम्बक वाणीसे आकृष्ट श्रोताजन उतने समयके लिए प्रेमकी उस परा, परम प्रशान्त चेतनामें स्वयंको स्नात अनुभव करने लगते थे।

किन्तु रामगुप्तका व्यक्तित्व उसके उपदेशोंसे भिन्न भी था। वह तरुण और असाधारण रूपवान् था। कामिनी-जनोंके लिए उसकी सहज-स्नेहिल चेष्टाओंमें एक असाध्य, अनिवार्य निमन्त्रण भी था। उसका कथित प्रेम आकाश-जैसा निरीह और चन्द्रिका-जैसा शीतल था, किन्तु जिस प्रेमका उसने, एक वर्गविशेषमें, सृजन किया था वह झंझा-जैसा प्रताड़क और अग्नि-जैसा दाहक भी था! युवतियोंका एक वर्ग उसके अन्तर्बाह्य सौन्दर्यपर मुग्ध, उसके लिए मन-ही-मन आकुल हो उठा था।

और उस दिनकी प्रवचन-सभा गहरे आश्चर्य और अनिर्वच आशङ्काके वातावरणमें विसर्जित हुई जिस दिन लोगोंने अपनी आँखों देख लिया कि

राजमहलोंकी नवागता, नव-विवाहिता युवराज्ञी रामगुप्तपर अनुरक्त है।

चर्चा महलोंकी न रहकर नगर-भरकी हो गयी। सहस्रों मुखोंने सहस्रों कानोंके समीप सटकर इसकी सूचना दी। महाराज चिन्तित हुए। युवराजका क्षोभ दिशाएँ खोजने लगा।

चातुर्मासके अभी दो महीने शेष थे। रामगुप्तको समयसे पूर्व बिदा करनेका निश्चय महाराजके लिए भी सुगम नहीं था। जनताका वह परम श्रद्धेय था।

सभा अगले दिन भी यथावत् जुड़ी। किन्तु आज युवराज्ञीका आसन रीता था, वह अपने महलके शयन-कक्षमें पीड़ा-शय्यापर थी। सभासे उसकी अनुपस्थिति ही परिस्थितिको साधनेका स्वभावतया सर्वप्रथम पग होना चाहिए था। फिर भी रामगुप्तकी आँखें जैसे उसे खोज रही थीं।

प्रवचनमें आज उसने फिर कहा: 'प्रेम निरीह है आकाश-जैसा, शीतल है चन्द्रिका-जैसा। उसमें आकुलता और दाहका भान भी कभी होता है, किन्तु वह अर्द्ध दर्शनका परिणाम है। जो उस आकुलता और दाहसे भयभीत होकर पीछे लौटता है वह महान् लक्ष्यके समीप आकर अपनी दिशा बदल देता है।'

यह युवराज्ञीके लिए रामगुप्तका मुक्त निमन्त्रण नहीं तो और क्या था? राजकुलकी मान्यता और सत्ताके लिए चुनौती नहीं तो और क्या था? आशङ्का और आतङ्कका वातावरण और भी सघन हो गया।

उसी रात रामगुप्तके एकान्त शयन-कक्षमें युवराज्ञीने प्रवेश किया। उसकी असाध्य विवशताके आगे दूसरा कोई मार्ग नहीं था। रामगुप्तने आगे बढ़कर उसके विमुक्त समर्पणको अपनी बाँहोंमें भर लिया। युवराज्ञीके मुखपर रामगुप्तके होठोंका एक स्पर्श अंकित हो गया।

युवराज कक्षके खुले द्वारपर थे, जैसे यन्त्र-कीलित। उनके हाथमें नंगी तलवार थी। रामगप्तने यवराज्ञीके पीछे-पीछे आते उन्हें देख लिया था।

एक हाथके सहारे युवराज्ञीको अपने वक्षसे सटाये रामगुप्तने दूसरे हाथसे युवराजको आगे बढ़नेका संकेत दिया। यन्त्र-चालित-से ही वे आगे बढ़ आये। तलवार उनके हाथमें नीचे लटक गयी थी।

युवराज्ञीकी दृष्टि युवराजपर गयी। वह अविचलित, अभीत, आश्वस्त थी।

'प्रेम शीतल और निरीह ही होता है युवराज! इसकी साक्षीके लिए उसका केवल एक स्पर्श ही सदाके लिए पर्याप्त है। अप्रीति और अप्रतीतिकी शृङ्खलाएँ ही उसमें दाह और अतृप्तिका आभास उत्पन्न कर देती है। इसे समझनेमें जो कुछ अवशिष्ट होगा उसे तुम कलकी वार्ता-सभामें ग्रहण कर लोगे।'

कहते हुए रामगुप्तने समीप आये युवराजके हाथमें युवराज्ञीका हाथ दे दिया। दोनों कक्षसे बाहर हो गये।

अगले दिनकी प्रवचन-सभामें रागगुप्तने प्रेमके कुछ और तथ्योंका उद्‌घाटन किया: 'घृतकी आहुतिसे अग्नि बढ़ती है। कामकी आहुतिसे काम और भी प्रज्वलित होता है। किन्तु प्रेमकी एक बूँद पड़ते ही प्रेम तृप्त हो जाता है। और निर्बन्ध काम ही प्रेम है।'

युवराज, महाराज, राजपरिवार और प्रजावर्ग सभीकी आँखोंमें प्रेमके एक नये ही स्तरकी तरलता थी। वह सचमुच उसके प्रशान्त, निरीह और सर्वस्पर्शी स्तरकी तरलता थी। युवराज्ञीका मुख-मण्डल सबसे अधिक सौम्य एवं सुदीप्त था। इस दीक्षाकी प्रधान पात्रा भी वही थी।

काठ और कुल्हाड़ी

तीन यात्री राह भूलकर एक घने, दुर्गम वनमें फँस गये। बाहर निकलनेका जब उन्हें कोई मार्ग न मिला तो उन्होंने अपने इष्टदेवका ध्यान किया। देवताने प्रकट होकर उनकी प्रार्थनापर एक-एक कुल्हाड़ी उनके हाथोंमें थमा दी।

उन कुल्हाड़ियोंकी काटसे वृक्षपर-वृक्ष धराशायी होने लगे, और उनके बीच मार्ग बनाते वे यात्री अपने रथों-बैलों सहित आगे बढ़ने लगे। वनकी देवीको इन मानवोंका यह अतिक्रमण अच्छा नहीं लगा, और उसने अपने वृक्षोंके काष्ठमें लौह-तत्त्वकी मात्रा कुछ और बढ़ाकर उन्हें बहुत कुछ अकाट्य बना दिया। यात्रियोंकी कुल्हाड़ियाँ वृक्षोंके तनोंपर से उचककर लौटने लगीं।

यात्रियोंने फिर अपने इष्टदेवका ध्यान किया। देवताने उनकी कुल्हाड़ियोंमें भेदक तत्त्वकी मात्रा बढ़ाकर उन्हे और भी सुदृढ़ रूपमे पैना कर दिया। कठोर वृक्ष अब सहज ही उनकी मारसे कटने लगे।

किन्तु मानवोंके इष्टदेवके समकक्ष वनदेवीका सामर्थ्य भी कम नहीं था। वह अपने वृक्षोंको उत्तरोत्तर सुदृढ और अकाट्य बनाती गयी और यह अपने मानवोंकी कुल्हाड़ियोंको उत्तरोत्तर तीक्ष्ण बनाता गया। यह अब वास्तवमें यात्रियों और वनके बीच नहीं, मनुदेव और वनदेवीके बीचका ही संघर्ष बन गया।

इस संघर्षका जब दीर्घ काल तक कोई पार लगता न दीखा तो अन्तमे एक यात्रीने अपनी कुल्हाड़ी फेंक दी। दूसरेने भी, जो थकान और निराशा से चूर हो चुका था, उसका अनुकरण किया; किन्तु तीसरा, जो सबसे अधिक साहसी और अजेय प्रवृत्तिका था, अपने उद्योगमें बराबर लगा रहा।

पहले यात्रीने अबकी बार वनदेवीका ही ध्यान किया, और उसके प्रकट होनेपर अपने अन्यायपूर्ण आक्रमणके लिए क्षमा माँगी। उसने वन-देवीसे एक रात उसके किसी कोमल भू-भागपर निवासकी अनुमति माँगी, जिसे देवीने सहर्ष प्रदान कर दिया। देवीने उसे पड़ोसकी धरतीका सबसे नरम भाग दिखा दिया और पातालभेदी वटका एक बीज उसकी सहायतार्थ देकर अदृश्य हो गयी। यह बीज धरतीके भीतर किसी भी दिशामें सौ घोड़ोंकी गतिसे चल सकता था।

इस यात्रीने वट-बीजको आवश्यक आदेशके साथ संचालित कर उसका अनुगमन किया। कुछ दूरतक सीधे धरतीके भीतर प्रवेश कर वह भीतर-ही-भीतर भूतलके समानान्तर बढ़ा और उस स्थलपर पृथ्वीको फोड़कर ऊपर आ गया, जहाँ वृक्षोंकी जड़ोंका अटकाव न रह गया था, और वनकी सीमा समाप्त हो चुकी थी। बीज-द्वारा निर्मित इस सुरंगकी राह यह यात्री भी वनके पार आ गया। दूसरा यात्री जिसे अपने रथ और कुल्हाड़ी का मोह भी था, इस पहलेका अनुसरण नहीं कर सका और अपनी थकान और निश्चेष्टताके कारण वहीं नष्ट हो गया।

× × ×

कहते हैं कि तीसरा यात्री अभी तक अपने इष्ट देवताके आशीर्वादोंका बल ले-लेकर, उस वनकी कटाई करता हुआ आगे बढ़ रहा है, और उसका संघर्ष उत्तरोत्तर प्रबल होता जा रहा है। यह तीसरा यात्री ही आजकी मानव-जातिका अगुआ बनकर चल रहा है। किन्तु क्या काष्ठ और कुल्हाड़ियोंका यह अजेय संघर्ष मनुष्यके हाथ-पाँवके लिए अछोर उस वनसे उसे और उसके अनुयायियोको कभी बाहर पहुँचा सकेगा ?

साधनाका अन्त

साधनाकी अनेक मंज़िलें पार करते हुए अन्तमें मैंने अपनी अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त कर लिया। स्वर्ग, अमरत्व और मोक्षकी कामनाओंसे भी अनाकर्षित, मेरी एकमात्र कामना अपने परम आराध्य प्रियतम भगवान्‌के साक्षात् दर्शनकी ही थी। लोचनाभिराम घनश्याम भगवान्‌के दर्शनोंके आगे कोटि-कोटि स्वर्गों और मोक्षोंके सुखको सन्तजनोंने न्योछावर कर दिया था और मैंने भी उन्हींकी परिपाटीका अनुशीलन किया था। मेरी अखण्ड एवम् अविचल अनुराग-साधनाके वशीभूत होकर भगवान् अपने साकार रूपमें मेरे सामने प्रकट हो गये। उन्मत्त उल्लाससे मैं नाच उठा। भगवन् नामके कीर्तनकी अजस्र धारा मेरे मुखसे फूट पड़ी। अथक नृत्य-गतिसे मेरे पग धरतीको नाप चले। सहस्रों भक्तोंकी भीड़ मेरे कीर्तन-ध्वनिकी अपने कण्ठोंसे आवृत्ति करती और मेरी नृत्य-गतिपर झूमती मेरे पीछे चल पड़ी। मैं अपने युग और देशका भक्त-शिरोमणि सन्त घोषित कर दिया गया।

और अन्तमें, कह नहीं सकता कितनी धरती और कितने कालकी यात्राके पश्चात् मेरे पग रुके, कण्ठस्वर थमा और उस असाधारण अननुभूत-पूर्व स्थिरता एवम् नीरवताके क्षणमें असंख्य वर्षोंका पुरातन एक युग अनायास ही खिंचकर मेरे सामने प्रस्तुत हुआ। मैंने देखा, एक मोटा चूहा गेरूकी एक छोटी डली मुखमें दबाये उछलता-कूदता भागा चला जा रहा है और उसके पीछे सहस्रों छोटे और कृशकाय चूहोंकी एक भीड़ लगी जा रही है। अग्रगामी मोटे चूहेका भयभीत अभिप्राय यही है कि उसे कोई अत्यन्त सुस्वादु खाद्य पदार्थ मिल गया है और उसे दूसरे सबोंसे बचाकर वह किसी सुरक्षित स्थानमें भाग जाना चाहता है और उसके पीछे लगे हुए चूहोंकी

भीड़ उस पदार्थमें अपना भी कुछ भाग लगानेके लिए आतुर दौड़ रही है।

उसी क्षणकी नीरवतामें मैंने सुना :

'असंख्य वर्षोंके पुरातन एक युगमें मूषक शरीरमें जन्म पाकर तुमने जो कुछ किया था ठीक वही मानव-सुलभ किंचित् परिवर्तित रूपमें इस समय भी कर रहे हो।'

अपना प्रगतिशील नर्तन-कीर्तन मैंने उसी समय समाप्त कर दिया, किन्तु मैंने देखा, मेरे अनुगामी भक्तजन मेरे बिना भी नर्तन-कीर्तनके उस पथपर बढ़ते ही गये। भक्त-शिरोमणि सन्तके पदसे च्युत होकर ही मैं अपनी उस पुरातन मूषक-गतिसे भी कुछ मुक्त हो पाया हूँ और मेरी संघर्षमयी साधनाओंका भी अन्त निकट आ गया है। —

× × ×

कथा कहनेका अधिकार मेरा है और यदि उसे सुन लेनेमें इस समय आपको आपत्ति नहीं हुई तो उसके भीतर एक खन नीचे उतरना भी सम्भवतः किसी समय आप स्वीकार कर लेंगे। मेरे कथा-गुरुका संकेत है कि मनुष्यके ऊँचेसे-ऊँचे आनन्दोल्लासकी परिभाषा इस कथामें निरापद-रूपसे खोजी जा सकती है।